विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष-१५ मई १९९६ अंक-५

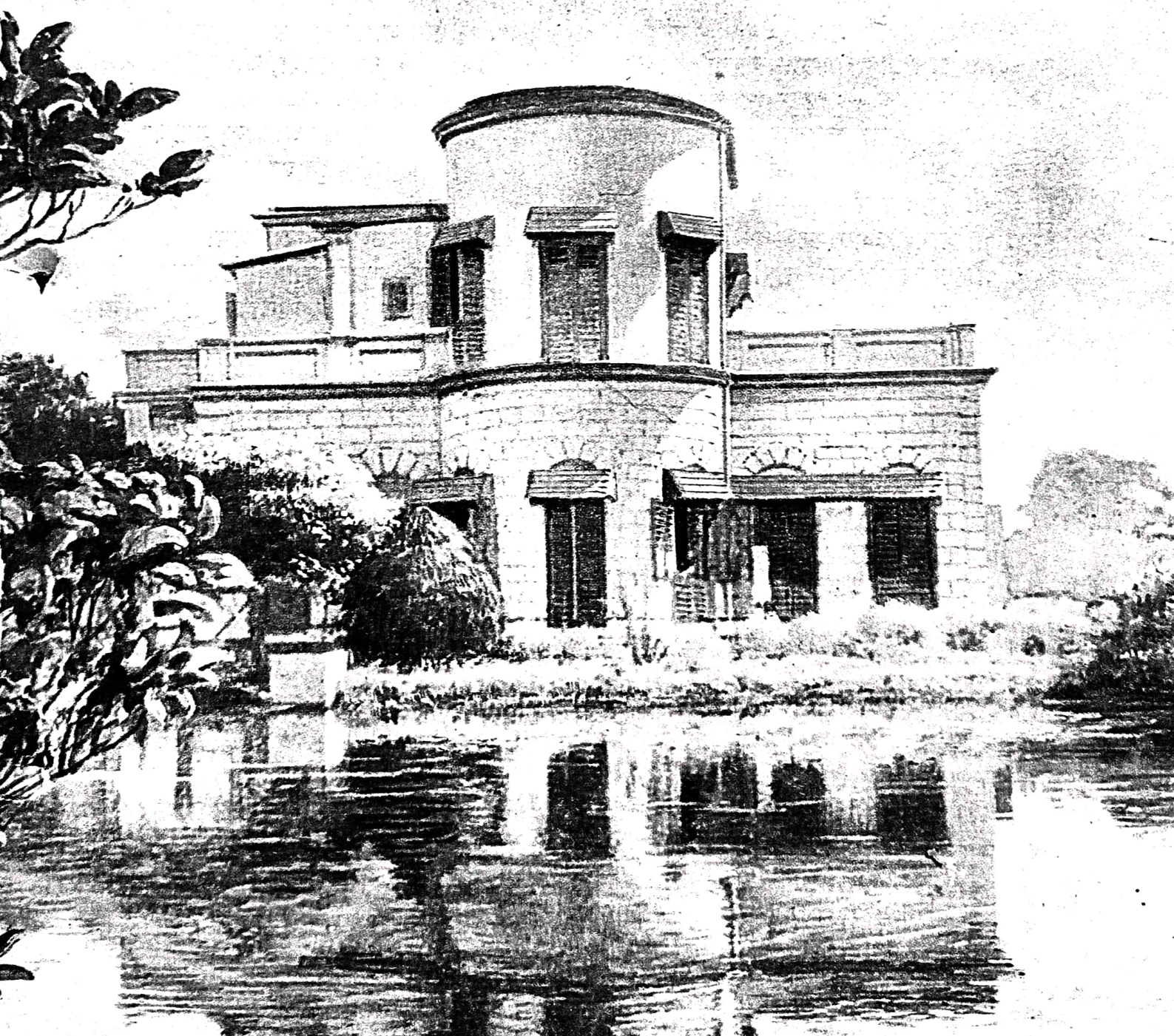

रामकृष्ण निलयम, अल्मोड़ा, [illegible] (हिमा[illegible])

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१३१. श्री जी. के. दीक्षित, बरोदा (गुजरात)
१३२. श्री सत्य प्रकाश लाल, वाराणसी (उ. प्र.)
१३३. श्री पूनम चन्द्र जैन – लुमडिंग (आसाम)
१३४. श्री राम आसरा वासुदेव—लुमडिंग (आसाम)
१३५. नार्थ कछार टिम्बर प्रोडक्ट्स-मंडेरदिशा(आ०)
१३६. श्री ओम प्रकाश अग्रवाल—लंका (आसाम)
१३७. श्री महेश गुरुवारा—लुमडिंग (आसाम)
१३८. श्री भोलानाथ उपाध्याय—लुमडिंग (आसाम)
१३९. श्री अमुभाई पटेल—बड़ौदा (गुजरात)
१४०. श्री रामभगत खेमका—मद्रास
१४१. श्री रूपाराम—जोधपुर (राजस्थान)
१४२. महावीर बाल वाचनालय-चन्दावलनगर(राज.)
१४३. श्री कृष्ण मलहोत्रा—नई दिल्ली
१४४. श्री गुलशन चावला—दिल्ली
१४५. श्री आर० के० ग्रोवर—नई दिल्ली
१४६. श्री राकेश रेल्हन – नई दिल्ली
१४७. श्री जयप्रकाश सिंह—कलकत्ता
१४८. श्री गंगाधर मिश्र—एन० सी० हिल्स
१४९. श्री वी० वी० शेरपा—लुमडिंग (आसाम)
१५०. श्री शंकर लाल अगरवाल – नगांव (आसाम)
१५१. श्री रामगोपाल खेमका—कलकत्ता
१५२. श्रीमती शान्ति देवी—इन्दौर (म० प्र०)
१५३. श्री जगदीश बिहारी—जयपुर (राजस्थान)
१५४. डॉ० गोविन्द शर्मा—काठमांडू (नेपाल)
१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६. सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—राजकोट (गुजरात)
१५७. श्रीमती गिरजा देवी—बखरिया (बिहार)
१५८. श्री अशोक कौशिक-मालवीय नगर, नई दिल्ली
१५९. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)
१६०. श्री रामकृष्ण साधना कुटीर, खण्डवा(म०प्र०)
१६१. श्रीमती आभा रानाडे, अहमदाबाद (म०प्र०)
१६२. श्री डी०एन० थानवी, जोधपुर (राजस्थान)
१६३. श्री सोहन लाल यादव, नाहर कटिया (आ०)
१६४. डा०(श्रीमती)रेखा अग्रवाल, शाहजहाँपुर(उ प्र
१६५. डॉ० (श्रीमती) सुनीला मल्लिक—नई दिल्ली
१६६. श्रीरामकृष्ण संस्कृतिपीठ, कामटी (नागपुर)
१६७. कुमारी जसवीर कौर आहूजा पटियाला पंजाब
१६८. श्रीमती मंजुला बोर्दिया उदयपुर (राजस्थान)
१६९. श्रीमती सुरेश अम्बाला शहर (हरयाणा)
१७०. डॉ० अजय खन्ना (बरेली उ०प्र०)
१७१. श्री एस० टी पुराणिक नागपुर
१७२. श्री धन्नालाल अमृतलाल सालंकी कलवानी
१७३. डॉ० कमलाकांत बड़ोदा (गुजरात)
१७४. डॉ० विनया पेण्डसे उदयपुर (राजस्थान)
१७५. सन्तोष बोनी रामवन (जम्मू एवं कश्मीर)

इस अंक में

		पृ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		
२. रे मन फजन किया (भजन)	केदारनाथ लाभ	
३. आतम ज्ञान बिना सब सूना (सम्पादकीय सम्बोधन)		
४. सच्चा गुरु कौन है	श्रीमत् स्वामी भूतशानन्द जी	१
५. विज्ञान और मानवीय मूल्य	श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द जी	१३
६. कल्प वृक्ष की छाया है रामकथा	स्वामी भास्करानन्द	१८
७ ठाकुर, मुझे भी यह कहिए	श्रीमती सुदेश	२१
८. इतिहास एवं पुराण (२)	ब्र० मोक्ष चैतन्य	२३
९. देवलोक	स्वामी अपूर्वानन्द	२९
१० समाचार एवं सूचनाएँ		३१

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा का एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१५ मई—१९९६ अंक—५

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक

शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :

विवेक शिखा

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

फोन : ०६१५२-४२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य -	५०० रु०
वार्षिक—	४० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	५५ रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्री रामकृष्ण ने कहा है

(१)

तुम रात को आकाश में कितने तारे देखते हो, परन्तु सूरज उगने के बाद उन्हें देख नहीं पाते। किन्तु इस कारण क्या तुम यह कह सकोगे कि दिन में आकाश में तारे नहीं होते! हे मानव, अज्ञान अवस्था में तुम्हें ईश्वर के दर्शन नहीं होते इसलिए ऐसा न कहो कि ईश्वर हैं ही नहीं।

(२)

बड़े-बड़े गोदामों में चूहों को पकड़ने के लिए दरबाजे के पास चूहादानी रखकर, उसमें लाई-मुरमुरे रख दिये जाते हैं। उसकी सोंधी-सोंधी महक से आकृष्ट हो चूहे गोदाम में रखे हुए कीमती चावल का स्वाद चखने की बात भूल जाते हैं और लाई खाने जाकर चूहादानी में फँसकर मारे जाते हैं। जीव का भी ठीक यही हाल है। कोटि-कोटि विषय-सुखों के घनीभूत स्मष्टिस्वरूप ब्रह्मानन्द के द्वारदेश पर अवस्थित होते हुए भी जीव उस आनन्द को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न न कर संसार के क्षुद्र विषय-सुखों में लुब्ध हो माया के फंदे में फँसकर मारा जाता है।

(३)

छोटा बच्चा घर में अकेले ही बैठे-बैठे खिलौने लेकर मनमाने खेल खेलता रहता है, उसके मन में कोई भय या चिन्ता नहीं होती। किन्तु, जैसे ही उसकी माँ वहाँ आ जाती है वैसे ही वह सारे खिलौने छोड़कर 'माँ-माँ' कहते हुए उसकी ओर दौड़ जाता है। तुम लोग भी इस समय धन-मान-यश के खिलौने लेकर संसार में निश्चिन्त होकर सुख से खेल रहे हो, कोई भय या चिन्ता नहीं है। पर यदि तुम एकबार भी उस आनन्दमयी माँ को देख पाओ तो फिर तुम्हें धन-मान-यश नहीं भाएँगे, तुम सब फेंककर उन्हीं की ओर दौड़ जाओगे।

रे मन, भजन किया कर!

—केदारनाथ लाभ

श्रीरामकृष्ण का तू रे मन, भजन किया कर!
उनके चरण-कमल को शत-शत नमन किया कर!!

संसार एक सपना
कोई यहां न अपना
त्रय-ताप-कुंड में गिर
है व्यर्थ और तपना

आकुल-विकल-हृदय से, अनुराग से, विनय से
उन पर सदैव अर्पण श्रद्धा-सुमन किया कर!

वे पाप—ताप—हारी
जग हेतु देह-धारी
मद, मोह, काम-कांचन—
हित खड्ग वे दुधारी

अपना उन्हें बनाकर, चित्-पद्म पर बिठाकर
हो ध्यान में समाहित, उनकी शरण लिया कर!

ले जोड़ एक नाता
स्वामी पिता कि माता
सुख-दुःख उन्हें सुना तू
वे बन्धु मित्र त्राता

अपना अहं गलाकर, आसक्ति सब मिटाकर
उनकी अपार करुणा में आमरण जिया कर!

जप योग ध्यान तेरे
वे ज्ञान गान तेरे
हैं एकमात्र वे ही
भगवान प्राण तेरे

निष्काम भावना से, अन्तर-उपासना से
उनकी कृपा-सुधा तू, पल-पल मगन पिया कर!
श्रीरामकृष्ण का तू रे मन, भजन किया कर॥

सम्पादकीय सम्बोधन

आत्म ज्ञान बिना सब सूना

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

यह दृश्यमान जगत बाहर से जैसा हमें दिखाई पड़ता है, वैसा है नहीं, और जैसा है वैसा दिखाई नहीं पड़ता। यह जगत नित्य, शाश्वत और स्थायी दिखाई पड़ता है, और है अनित्य, नश्वर और क्षण-भंगुर। यह जगत सुखमय, रंगीन और मोहक दिखाई पड़ता है, और है अनन्त-अशेष दुखों से भरा, ईर्ष्या-द्वेष, ममता, स्वार्थपरता, हत्या, लूट, बलात्कार और कृतघ्नता में आकंठ डूबा, भयानकता और पापाचार में लिप्त। किलकते-फुदकते बच्चे, इठलाते युवक, मचलती युवतियाँ, प्यार के मीठे नग्मे और तराने, लाउड-स्पीकरों पर थिरकतीं फिल्मी धुनें, रंगीन बल्बों से छनकर निकलती मादक रोशनी की बांहों में लिपटे-सिमटे शहर और आल्हा, विरहा, कजरी, बारहमासे, झूमर, सोहर और फाग की स्वर-लहरियों में डूबते-उतराते गांव और बस्तियां! ओह! ये सब कितने मधुर-मादक और उन्मादक लगते हैं! लेकिन इन सबके भीतर एक आह, कराह, करुण-क्रन्दन और आर्तनाद की बहती अन्तर्धारा होती है, जिस पर हठात् हमारा ध्यान नहीं जाता। यहां तो—

शून्य होने को भरते मेघ
उदित होता छिपने को चंद
यहां खिलते झरने को फूल
दीप जलता होने को मंद
यहां किसका अनन्त यौवन!

महाकाल अपनी भयंकर विनाश-लीला का तांडव प्रतिक्षण कर रहा है। संहार के विराट् सागर में सबको लीलने के लिए मानो वह पल-पल ज्वार पर ज्वार उठा रहा है। पाप और पापी, राजा और प्रजा, सुन्दर और असुन्दर, मंत्री और अधिकारी सभी महाकाल के मुख में, दीपक पर पतंगों की तरह, प्रवेश करने के लिए क्यू में खड़े हैं। यहां कुछ भी स्थिर नहीं, कुछ भी स्थायी नहीं। हमारा ज्ञान, विज्ञान, नृत्य-संगीत, बड़ी-बड़ी फैक्टरियाँ और चमचमाती गाड़ियाँ, वातानुकूलित महल-दुमहले और सारे जीव-जन्तु उसी महानाश—मृत्यु की ओर तीव्रता से बढ़ रहे हैं।

रवि बाबू की एक बड़ी अच्छी कविता है, इस संदर्भ में—

की गम्भीर दुःखे मग्न समस्त आकाश
समस्त पृथिवी। चलितेछि यतदूर
शुनिते एकमात्र मर्मान्तिक सुर
"येते आमि दिब ना तोमाय!" धरनीर
प्रान्त हते नीलाभ्रेर सर्वप्रान्त तीर
ध्वनिते छे चिरकाल अनाद्यन्त रवे
"येते नाहि दिब' येते नाहि दिब" सबे
कहे 'येते नाहि दिब'। तृण क्षुद्र अति
तारे ओ बांधिया बक्षे माता बसुमति
कहिछेन प्राणपने 'येते नाहि दिब'।
आयुक्षीण दीप मुखे शिखा निब-निब
आँधारेर ग्रास हते के टानिछे तारे
कहिते छे शतबार 'येते दिब ना रे'

हाय! किस गंभीर दुःख में मग्न है यह सारा आकाश और यह सारी पृथ्वी! जितनी दूर तक जाता हूँ, एक मात्र यही प्राणलेवा सुर, यही मर्मभेदी

आवाज सुनाई पड़ती है— 'मैं तुम्हें नहीं जाने दूगी।' धरती के इस छोर से लेकर नीले बादलों के उस छोर तक एक ही सनातन स्वर गूँज रहा है—'नहीं जाने दूँगी।' सब की ही वाणी है, 'नहीं जाने दूँगी।' वह दीप शिखा आयुक्षीण होकर अब बुझी तब बुझी की हालत तक पहुँच गयी है। वह अंधकार का ग्रास होना ही चाहती है। तब भी न जाने कौन सारी ताकत लगा कर कह रही है—"नहीं रे, नहीं जाने दूँगी रे!'

ये अनन्त चराचर स्वर्ग मर्त्य छेये
सब चेये पुरातन कथा सब चेये
गंभीर क्रन्दन 'येते नाहि दिब' हाय!
तब येते दिते हय, तबू चले याय।
चलिते छे एमनि अनादि काल हते
प्रलय समुद्रवाही सृजनेर स्रोते
प्रसारित व्यग्रबाहु ज्वलन्त आंखिते
'दिब न दिब ना येते' डाकिते-डाकिते
हु-हु करे तीव्र वेगे चले याय सबे
पूर्ण करि विश्वतट आर्त्त कलरवे
सम्मुख उर्म्मिरे डाके पश्चातेर ढेउ
'दिब ना दिब ना येते' नाहि सुने केउ
नाहि कोनो साड़ा।

इस अनन्त चराचर जगत में, स्वर्ग से लेकर मर्त्य लोक तक सबसे पुरानी बात; सबसे गम्भीर क्रन्दन यही है—'नहीं जाने दूँगी, नहीं जाने दूँगी। फिर भी हाय, जाने देना ही पड़ता है। जाने वाला इस रोकथाम के करुण स्वर के बावजूद चला ही जाता है। ऐसा ही अनादि काल से होता चला आ रहा है। सृजन के इस प्रलय समुद्रवाही स्रोत में, विकलता से बांहें फैलाये हुए, जलती आंखों से— 'नहीं जाने दूँगी, नहीं जाने दूँगी कहते-कहते, इस संसार के तट को आर्तनाद से पूर्णकर सभी हू-हू करके तीव्र वेग से चले जाते हैं। आगे के जल के वेग को पीछे की लहर चींख-चींख कर कहती है—'नहीं जाने दूँगी, नहीं जाने दूँगी।' किन्तु कोई नहीं सुनता, कोई उत्तर नहीं देता। बस सब चलते ही चले जाते हैं।

यही है संसार। हम लाख चेष्टा करके भी इस मृत्यु तरंग को रोक नहीं सकते—एक पल, एक क्षण के लिए भी नहीं रोक सकते। लेकिन फिर भी हम दीवाने हैं इस की झूठी शोभा के, हम मुग्ध हैं, बेसुध हैं, विस्मृत है इस संसार की कृत्रिम क्षणिक, दाहक और सर्वग्रासी सुन्दरता पर।

आप कहेंगे—'जीवन और जगत् का यह आतंकवादी चित्र है। भयावह तस्वीर है यह उस संसार की जिसकी गोद में हम अपनी पूरी जीवन-यात्रा करते हैं—उल्लास और उमंग के साथ। और फिर अगर यह संसार इतना ही भयावह है, क्षणिक है, कुरूप और वीभत्स है तो फिर क्यों न हम जब तक जीवित हैं, तब तक, जहां तक संभव हो इसी संसार का रस लेकर—पूर्णता में इस रस का उपभोग कर, यहां से चले जायं?"

एक हद तक यह विचार सही भी लगता है। लेकिन जीवन और जगत को देखने की यह दृष्टि एक खतरा भी पैदा करती है। वह यह कि हम मिथ्या और असत् वस्तु को सही मानकर जब आचरण करने लगते हैं तब पूरे भ्रम का एक जाल ही हम सिरज लेते हैं और हमारा हर आचरण ही गलत होने लगता है। अंधेरे में रस्सी को साँप मानकर हम कितना कूदते-फाँदते हैं! कितना तड़पते-छटपटाते हैं! जब रोशनी आने पर हम देखते हैं कि जिसके भय से हम आक्रांत थे वह सांप नहीं, रस्सी है, तब हमें किये पर कितना पछतावा होता है! और तब हम कितनी शांति और आश्वस्ति में आ जाते हैं! इसी तरह क्या हमारी सारी जिन्दगी कूदने फाँदने, दौड़ने-घूपने की एक थकान भरी गाथा बन कर नहीं रह गयी है?

संसार और शरीर को जब तक हम सत्य मानते हैं तब तक हम छटपटाहटों, विकलताओं और पीड़ाओं के मरु-प्रदेश में ही भटकते रहते हैं। अनु-

कूलता में प्रसन्न और प्रतिकूलता में पीड़ित होते रहते हैं। संयोग में सुख और वियोग में दुःख का अनुभव करते रहते हैं। जन्म में प्रफुल्लता और मृत्यु में महाशोक के सागर में बहने लगते हैं।

संसार और शरीर को सत्य मानने पर हममें आसक्ति उत्पन्न होती है। आसक्ति से कामना उत्पन्न होती है। कामना से क्रोध का आविर्भाव होता है। क्रोध मोह को उत्पन्न करता है। मोह से स्मृति जाती रहती है। स्मृति भ्रंश होने से बुद्धि नष्ट होती है। और बुद्धि-नाश से विनाश होता है।

संसार और शरीर दोनों जड़ है। इनसे जुड़कर हम जड़ता से ही अपने को बाँधते हैं। जड़ता से बँधना आसक्ति के कारण ही होता है। और आसक्ति ही हमें संसार-चक्र में बार-बार उत्पन्न होने को विवश करती है। आसक्ति से छूटना ही मुक्ति का अर्थात् आनन्द का, चिरंतन आनन्द का रहस्य है।

आसक्ति से मुक्त होने के लिए अज्ञान के केंचुल को उतार कर, ज्ञान के अपने सत्य स्वरूप में प्रतिष्ठित होने के लिए दृढ़ संकल्प के साथ सत्य के संधान में लग जाना पड़ेगा। यही हमारा धर्म है।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक व्याख्यान में कहा था—"हमारे सांसारिक लोग कहते हैं, धर्म, दर्शन ये सब व्यर्थ की वस्तुएँ लेकर दिमाग खराब मत करो। दुनिया में रहो, माना यह दुनिया बड़ी खराब है, पर जितना हो सके इसका मजा ले लो।' सीधे-सादे शब्दों में इसका अर्थ यही है कि दिन-रात पाखण्डपूर्ण जीवन व्यतीत करो—अपने घाव को जब तक हो सके, ढके रखो। एक के बाद दूसरी जोड़-गाँठ करते जाओ, यहां तक कि सब कुछ नष्ट हो जाय और तुम केवल जोड़-गाँठ का एक समूह मात्र रह जाओ। इसी को कहते हैं सांसारिक जीवन। जो इस जोड़-गाँठ से संतुष्ट हैं, वे कभी भी धर्मलाभ नहीं कर सकते। जब जीवन की वर्त्तमान अवस्था में भयानक अशान्ति उत्पन्न हो जाती है, जब मिथ्या और पाखण्ड के प्रति प्रबल वितृष्णा उत्पन्न हो जाती है, तभी धर्म का प्रारम्भ होता है। भगवान बुद्ध ने बोधिवृक्ष के नीचे दृढ़ स्वर से जो बात कही थी, उसे जो अपने रोम-रोम से बोल सकता है, वही वास्तविक धार्मिक होने योग्य है। संसारी होने की इच्छा उनके भी हृदय में एक बार हुई थी। इधर वे स्पष्ट रूप से देख रहे थे कि उनकी यह अवस्था, यह सांसारिक जीवन एकदम भूल है, पर इसके बाहर जाने का उन्हें कोई मार्ग नहीं मिल रहा था। प्रलोभन एकबार उनके निकट आया और कहने लगा—छोड़ो भी सत्य की खोज, चलो, संसार में लौट चलो, और पहले जैसा पाखण्डपूर्ण जीवन बिताओ, सब वस्तुओं को उनके गलत नामों से पुकारो, अपने निकट और सब के निकट दिन-रात मिथ्या बोलते रहो। यह प्रलोभन उनके पास पुनः आया था, पर उस महावीर ने अपने अतुल पराक्रम से उसे उसी क्षण परास्त कर दिया। उन्होंने कहा, 'अज्ञान पूर्वक केवल खा-पीकर जीने की अपेक्षा मरना ही अच्छा है; पराजित होकर जीने की अपेक्षा युद्ध-क्षेत्र में मरना श्रेयस्कर है।' यही धर्म की भित्ति है। जब मनुष्य इस भित्ति पर खड़ा होता है, तब समझना चाहिए कि वह सत्य की प्राप्ति के पथ पर, ईश्वर की प्राप्ति के पथ पर चल रहा है। धार्मिक होने के लिए भी पहले यह दृढ़ प्रतिज्ञा आवश्यक है। मैं अपना रास्ता स्वयं ढूँढ़ लूँगा। सत्य को मानूँगा अथवा इस प्रयत्न में प्राण दे दूँगा। कारण, संसार की ओर से तो और कुछ पाने की आशा है ही नहीं यह तो शून्य स्वरूप है—दिन-रात उड़ता जा रहा है। आज का सुन्दर, आशापूर्ण तरुण कल का बूढ़ा है। आशा, आनन्द सुख—ये सब मुकुलों की भांति कल के शिशिरपात-से नष्ट हो जायँगे। यह हुई इस ओर की बात; और दूसरी ओर हैं विजय का प्रलोभन—जीवन के समस्त अशुभों पर भी विजय प्राप्ति की संभावना और तो

और, स्वयं जीवन और जगत पर भी विजय-प्राप्ति की संभावना है। इसी उपाय से मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है। अतएव जो लोग इस विजय-प्राप्ति के लिए, सत्य के लिए, चेष्टा कर रहे हैं, वही सत्य-पथ पर हैं, और सारे वेद भी यही प्रचार करते हैं, 'निराश मत होओ; मार्ग बड़ा कठिन है छुरे की धार पर चलने के समान दुर्गम; फिर भी निराश मत होओ; उठो, जागो और अपने परम आदर्श को प्राप्त करो।'[1]

अपने परम आदर्श को प्राप्त करने के लिए छुरे की धार पर चलने के समान दुर्गम पथ पर चलना होगा। क्या है हमारा परम आदर्श? संसार के रूप को, उसके वास्तविक रूप को जानकर, उसके साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करना। जब तक हम संसार को उसके मूल रूप में नहीं जान लेते तबतक हम उसे गलत नाम-रूपों में जानते रहेंगे और दुःख-भोग करते रहेंगे। हम जानते हैं कि नाम और रूप मिथ्या होते हैं। जो कुछ भी परिवर्त्तनशील है वह असत् है, मिथ्या है। और चूँकि नाम और रूप परिवर्त्तनशील हैं। अतः वे मिथ्या हैं। तो सत्य क्या है?

सत्य है एकमात्र परमात्मा—एकमेवाद्वितीयम्। इस परमात्मा को जानना ही हमरा लक्ष्य होना चाहिए। उस एक को जान लेने से ही सब कुछ जान लिया जाता है। उसको नहीं जानने से कुछ नहीं जाना जाता है। और इसी से हम भाग-दौड़ की जिन्दगी जीते हुए अन्त में थक कर, हार कर, हांफते हुए अपने प्राण विसर्जन कर देते हैं।

कहां है वह परमात्मा? वह हमी में है। वह हमी है। उपनिषदें डंके की चोट पर इस तथ्य की घोषणा करती है।

एको देवः सर्व भूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः,
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥[2]

अर्थात् वही एक देव ही सभी प्रणियों में छिपा सर्वव्यापी और सब प्राणियों का अन्तरात्मा, परमात्मा है। वही सबके कर्मों का अधिष्ठाता, समस्त जीवों का निवास स्थान, सब का साक्षी, चेतन-स्वरूप, सर्वथा विशुद्ध और गुणातीत है।

चूँकि वह परमात्मा सब देश में है, सर्वत्र है, अतः यहाँ भी है। वह सभी कालों में है, अतएव इस समय भी है, वह सभी जीवों में है, इसलिए हम में भी है। आत्य तत्व की उपलब्धि करने वालों को इस तथ्य पर निरन्तर विचार करते रहना चाहिए। हमें इस बात में दृढ़ आस्था होनी चाहिए कि परमात्म तत्व ही वास्तविक तत्व है। इसके अतिरिक्त कुछ भी तत्वपूर्ण नहीं है। तत्व वह है जो चिरन्तन है, सर्वत्र है और सदैव है। इस तत्व को जान लेने पर जीवन और जगत के सम्बन्ध में हमारे सारे संशय दूर हो जाते हैं।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।[3]

अर्थात् कार्य और कारण स्वरूप उन परात्पर परब्रह्म को तत्व से जान लेने पर इस जीव के हृदय की अविद्यारूपी गाँठ खुल जाती है जिसके कारण उसने इस जड़ शरीर को ही अपना स्वरूप मान रखा है। इतना ही नहीं उसके समस्त संशय सर्वथा मिट जाते हैं और समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो

१. स्वमी विवेकानन्द : ज्ञान योग : श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर : पृ० १३०-३२
२. श्वेताश्वतरोपनिषद् ६।११ ३. मुण्डकोपनिषद् २।२।८

जाते हैं। यानी यह जीव सारे बन्धनों से मुक्त होकर परमानन्द स्वरूप परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

जब तक हम अपने आत्मस्वरूप को नहीं जान लेते तभी तक यह जड़ और मरणधर्मा जगत हमें मोहक, मादक और उन्मादक लगता है।

जब तक हम अपने अत्मस्वरूप को नहीं जान लेते तभी तक ईश्वर असत्य, काल्पनिक और वक-वास लगते हैं तथा संसार और शरीर ही सत्य और अपने प्रतीत होते हैं।

संसार और शरीर का सत्य एवं आत्मीय लगना ही माया और महाकाल के सर्वग्रासी मुख में प्रविष्ट होने के लिए स्वयं को झोंकना है।

आत्मस्वरूप को बोध हो जाने पर 'मैं' और 'मेरा' का भाव मर जाता है, अपने-परायेपन का द्वैत-भाव झड़ जाता है और हमारी चेतना में खिल उठता है अद्वैत का, भूमा का शाश्वत शतदल।

जहाँ हम कुछ अन्य नहीं देखते, कुछ अन्य नहीं सुनते तथा कुछ अन्य नहीं जानते, वह भूमा है।

जहां हम कुछ और देखते हैं, कुछ और सुनते हैं एवं कुछ और जानते हैं, वह अल्प है।[४]

जो भूमा है, वही अमृत है और जो अल्प है, वह मर्त्य है। सुख—सच्चा सुख, एक अविनाशी आनन्द, एक अमृत आनन्द—भूमा में है, अद्वैत में है, आत्म-ज्ञान में है, अल्पता में नहीं, द्वैत में नहीं, संसार और में नहीं। यह भूमा ही सर्वत्र है, सब कुछ है और आत्मा है। इसी भूमा को, आत्मा को जान लेने पर प्राप्त कर लेने पर कुछ और जानना शेष नहीं रह जाता।

आत्मा को पहचान कर परमात्मा को ही हम पहचानते हैं। आत्मा को उपलब्ध कर, परमात्मा को ही हम उपलब्ध करते हैं। आत्म ज्ञान से ही पर-मात्मा-ज्ञान भी होता है। श्री रामकृष्ण कहते थे—"मनुष्य स्वयं को पहचानने से भगवान् को पहचान सकता है। 'मैं कौन है? हाथ, पैर, रक्त, माँस—इनमें से 'मैं' कौन हैं? इस तरह भलीभांति विचार करने पर दिखाई देता है कि 'मैं' नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। जिस प्रकार प्याज का छिलका अलग करते जाओ तो छिलका ही छिलका निकलता जाता है, सार भाग कुछ मिलता ही नहीं, उसी प्रकार विचार करने पर 'मैं' पन नाम से कुछ भी नहीं मिलता। अन्त में जो बचता है वही आत्मा या चैतन्य है। 'मैं' 'मेरा' के दूर हो जाने पर भगवान् दर्शन देते हैं।"[५]

इस आत्मा को ढूँढ़ना नहीं, केवल पहचान लेना है। खोजना नहीं, केवल जान लेना है। ढूँढ़ते और खोजते हैं हम उसे जो हमसे अलग है, भिन्न है, दूर है। जो हम में है, जो हमसे अभिन्न है, और जो हम स्वयं ही हैं वस्तुतः, उसे खोजना कहाँ है? उसे खोजने के लिए भटकना अज्ञान है और उसे जान लेना ज्ञान है। मगर उसे हम जल्दी जान पाते नहीं। हमारी दशा उस प्रेमिका की तरह है जो रोती हुई कहती है :—

> मैं और मेरा यार दोनों इक बस्ती में बसते हैं,
> मगर किस्मत की खूबी है कि दर्शन को तरसते हैं।

अजब हैरानी है! एक गांव में रहकर भी मुलाकात को तड़प रही है महबूबा। छटपटाती खोजती फिर रही है प्रेमिका! कहां है मेरा यार! कहां है मेरा प्रियतम! कहा है मेरा दिलवर, मेरा

---

४. छान्दोग्य उपनिषद् ६२७

देवता, मेरा प्रभु ! उस प्रेमिका से कहना होगा—बन्द करो भटकना, बन्द करो दर-दर की ठोकरें खाना, बन्द करो यहाँ-वहाँ तलाशने की कोशिश, तुम सीख लो ठहरना अपने गांव में। बैठी रहो अपने गांव में ! तुम्हारे ही गाँव में, नहीं, तुम्हारे ही घर में, नहो-नहीं तुम्हारा महबूब बैठा हुआ है और तू तलाश रही है बाहर। अपने भीतर झांक पगला ! अपना घूँघट हटा दीवानी ! पायेगी तेरा प्रियतम तुम्हारे बिल्कुल करीब था, सदा से था, हमेशा था और तू नाहक परेशान हो रही थी।

एक आदमी आधी रात को उठा और तमाकू पीने की इच्छा से टिकिया सुलगाने के लिए पड़ोसी के घर जाकर दरवाजा खटखटाने लगा। घर में सभी लोग सो गये थे। काफी देर बाद एक व्यक्ति ने दरवाजा खोला और पूछा, "क्यों जी, क्या बात है ?" इस आदमी ने कहा, "तमाकू पीना है, टिकिया सुलगाने के लिए थोड़ी अंगार चाहिए थी" तब पड़ोसी ने कहा, 'तुम भी बड़े अजीब हो ! अंगार के लिए आधी रात को इतनी तकलीफ जठाकर तुम यहाँ आए, इतना दरवाजा खट-खटाया, पर तुम्हारे तो हाथ ही में लालटेन जल रही है !" मनुष्य जो पाना चाहता है वह उसके पास ही है, फिर भी वह उसके लिए नाना जगह भटकता फिरता है।"

सचमुच, हमें भटकना नहीं, ठहर जाना है। दौड़ना नहीं, रुक जाना है। छटपटाना नहीं, शान्त हो जाना है। बाहर नहीं, अपने भीतर झांकना है। धारा नहीं, राधा हो जाना है।

कबीर ने गाया है – बड़ी मस्ती में अनुभूति का एक गीत गाया है—

पानी विच मीन पियासी।
मोहि सुनि-सुनि आवत हाँसी।

अतम ज्ञान बिना सब सूना, क्या मथुरा क्या काशी।
घर में वस्तु धरी नहि सूझै, बाहर खोजन जासी ॥
मृग की नाभि माहि कस्तुरी, बन-बन फिरत उदासी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सहज मिले अविनासी ॥

हाँ, मछली पानी में ही है, मगर प्यासी है। एक अजीब अचम्भे की, हँसी, हैरानी और परेशानी की बात है यह मगर है बात सही। आतम ज्ञान बिना सब सूना, क्या मथुरा क्या कशी ! अगर आत्म ज्ञान नहीं हुआ तो सारा जीवन व्यर्थ है, संसार में जन्म लेना, संसार में रहना और संसार का बने रहना—सब व्यर्थ है। आत्मज्ञान नहीं हो तो काशी उजाड़ और गंगा अंगार ही लगेगी। मथुरा और काशी जाने से, चारो धाम और चोवीसों तीर्थ का पर्यटन करने से कुछ नहीं होने को।

यह 'आतम ज्ञान' क्या है ? ज्ञान के द्वारा, सत्-असत् के बिवेक के द्वारा असत् को त्याग और सत् को ग्रहण कर अपने मूल स्वरूप में स्थित हो जाना। 'आतम ज्ञान' का साधक 'नेति-नेति' का विचार करते हुए मिथ्या वस्तुओं को छोड़ता जाता है और जहाँ विचार समाप्त हो जाता है, जहां जानना कुछ शेष नहीं रह जाता वहाँ आत्मा का आलोक—सौ-सौ सूर्यों के आलोक की तरह— उसके भीतर जगमगा उठता है। वह समाधि-मग्न हो जाता है। उसे आत्मज्ञान यानी ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त हो जाता है। श्रीरामकृष्ण कहते थे—"चोर घर में घुसकर अँधेरे में वस्तुओं को टटोलता है मेज पर हाथ रखा 'यह नहीं' कहकर छोड़ दिया। फिर शायद कुर्सी पर हाथ रखा, उसे भी 'यह नहीं कहकर छोड़ दिया। इस तरह 'यह नहीं' 'यह नहीं' ('नेति'-'नेति') करते हुए, एक के बाद एक वस्तुओं की छानबीन करते करते अन्त में उसका हाथ तिजोरी-वाली पेटी पर पड़ जाता है। तब वह 'यह है !' ('इति') कह उठता है और वहीं उसकी खोज समाप्त हो जाती है। ब्रह्म का अनुसन्धान भी इसी प्रकार है।"

और इस प्रकार नेति-नेति के द्वारा हम जिस 'इति' पर पहुँचते हैं वही हमारा आत्मस्वरूप है, वही

५. अमृतवाणी : रामकृष्ण मठ, नागपुर, वाणी ७३६

'आतम ज्ञान' है। इस आत्म ज्ञान के होते ही हम समझ जाते हैं कि—

द्वैतमूलमहो दुःखं नान्यत्तस्यास्ति भेषजम्।
दृश्यमेतन्मृषा सर्व एकोऽहं चिद्रसो ऽमलः ॥[6]

आह ! द्वैत-भाव ही सारे दुखों का मूल है, कारण है। इन दुखों से मुक्त होने को कोई अन्य औषधि नहीं, सिवा इस अनुभूति के कि दृश्यमान सारा जगत् मिथ्या है और शुद्ध एक परम चैतन्य तथा आनन्द के अमल रस से परिपूर्ण हूँ।

और आनन्द के अमल रस से परिपूर्ण होकर हम यह साह्लाद घोषणा कर उठते हैं—

न मे बन्धोऽस्ति मोक्षो वा भ्रान्तिः शान्ता निराश्रया।
अहो मयि स्थितं विश्वं वस्तुतो न मयि स्थितम् ॥

कि मेरा न कोई बन्धन है, न कोई मोक्ष (क्योंकि आत्मा सदैव मुक्त है)। आश्रय और आधार के समाप्त हो जाने के कारण मेरी भ्रांति शांत हो गयी है, समाप्त हो गयी है। (हमलोग अपने को बद्ध जीव समझते हैं इसी से मुक्ति की खोज करते हैं। यह मात्र भ्रम है जिसका कारण अपने शुद्ध स्वरूप का अज्ञान है। जब हम अपने आत्म के शुद्ध स्वरूप पर निरन्तर विचार करते हैं तब यह अज्ञान नष्ट हो जाता है। भ्रांति अज्ञान का आधार या आश्रय खो देती है और मिट जाती है।) अहा, यह संसार यद्यपि मुझमें स्थित है तथापि वास्तविक रूप से इसकी कोई सत्ता नहीं है।

और तब हम अपने शुद्ध स्वरूप को जानकर कह उठते हैं—

न मृत्युर्न शंका न मे जाति भेदः
पिता नैव मे नैव माता न जन्म।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्य-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।
न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखम्
न मन्त्रं न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।

जब हम अपने इस स्वरूप को जान लेते हैं, जब हम इस तथ्य का और तत्व का उद्घाटन कर लेते हैं कि मैं चिदानन्द रूप हूँ, मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ तब यह संसार रहते हुए भी हमारे लिए नहीं रहता। तब यह शरीर रहते हुए भी हमारे लिए नहीं रहता। अर्थात् तब संसार की भयावहता, कुरूपता, मरण-धर्मिता हमारे लिए विनष्ट हो जाती है। सारा विनष्ट हो जाती है। सारा जगत् ही हमें आनन्दमय, उल्लासमय, संगीत और नृत्यमय दिखाई पड़ने लगता है। एक शिव-संगीत से गुंजित, एक पार्वती-नृत्य से पूरित, एक महारास से रसाप्लावित हो उठता है यह संसार। यहाँ न मृत्यु रह जाती है, न जन्म रह जाता है, न पुण्य और न पाप, न सुख और न दुःख। किसकी मृत्यु होगी यहां! कौन दुःखी होगा यहां! किसका पुण्य और किसका पाप! किसका शोक और किसका ताप। आत्मा तो निर्विकार है, शाश्वत है, अनन्त है।

इस आत्मज्ञान के बिना संसार में जो कुछ है वह व्यर्थ है, निःसार है, शून्य है, दुःखद है।

इस आत्म ज्ञान से संसार हमारी ही चेतना का चिन्मय प्रसार है और शरीर ब्रह्मपुर है और सब कुछ ब्रह्ममय है अतः आनन्दमय है। इस आत्मज्ञान से सबकी आँखों में हमारा ही आलोक, सबके अधरों पर हमारी ही मुस्कान, सबके कंठों से हमारा ही

६. अष्टावक्र संहिता : २।१६ ७. वही २।१८

मधुगान और सबकी धमनियों में हमारी ही धड़कन तरलायित होती दीखती है।

इस आत्मज्ञान से ही पत्तियों की मर्मराहट में एक अनहद संगीत, वायु की सनसनाहट में ब्रह्म-वेणु की एक मीठी तान, और पक्षियों के कलरव में एक अनादि डमरु का डिम-डिम नाद सुनाई पड़ता है।

सचमुच, आत्मज्ञान के बिना न हम अपने को न संसार को जान पाते हैं, न अपने जीवन का और न इस जगत का ही अमल मधुरस पान कर पाते हैं। इसी से किसी ने कहा है—

विद्या बल धन रूप यश कुल सुन बनिता मान।
सभी सुलभ संसार में दुर्लभ आतम ज्ञान॥

लेकिन यह 'आतम ज्ञान' कितना भी दुर्लभ क्यों न हो, हमें उसे प्राप्त करने का शुद्ध सकल्प लेना ही होगा, दृढ़व्रत धारण करना ही होगा। भगवान् श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्दजी महाराज से मेरी अनन्य प्रार्थना है कि वे इस आत्म ज्ञान की प्राप्ति के लिए हमें उत्प्रेरित करें और इस आत्म-ज्ञान में हमें प्रतिष्ठित कराने की अहेतुकी कृपा करें। जय श्रीरामकृष्ण। जय स्वामीजी महाराज॥

गंध चोर

एक संन्यासी तालाब में उतरकर वहाँ खिले पुष्पों को सूंघते हुए विचर रहे थे कि वहाँ की अधिष्ठात्री देवी ने यह देखा और धमकाते हुए कहा, "इन कमलों की गंध कौन चुराता है?" संन्यासी ने उत्तर दिया, "मैंने फूलों को स्पर्श भी नहीं किया, केवल दूर से सूंघा है, मैं चोर कैसे हो गया?"

देवी बोली, 'मालिक की अनुमति प्राप्त किये बिना तू इन फूलों की गंध सूंघता है, तू गंध चोर हैं।'

इसी समय एक आदमी तालाब में घुसकर कमल के फूलों और जड़ें उखाड़ने लगा। देवी ने कुछ नहीं कहा। इस पर संन्यासी बोला, 'मुझे तो चोर कहती है, इसे क्यों नहीं कहती, सत्यानाश किये डाल रहा है।'

देवी ने उत्तर दिया, जो पाप में डूबा हुआ आदमी है, उसे कहने के लिए मेरे पास शब्द नहीं है। जो पुण्यशील धर्मज्ञ है उसका छोटा दोष भी मुझे महा भयंकर प्रतीत होता है।

(प्रस्तुति : संतोष जैन)
नवभारत टाइम्स से साभार

सच्चा गुरु कौन है ?

श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज
(अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन)

उपनिषदों की घोषणा है : "मात्र गुरु से प्राप्त ज्ञान ही फलवान होता है।" अपने जीवन में हमें यदि ज्ञान के एक छोटे अंश को भी फलदायी बनाना है तो इसे निश्चयपूर्वक गुरु के श्रीमुख से ही सुनना चाहिए। वेदों और पुराणों में इस सिद्धान्त के दृढ़तापूर्वक अनुसरण पर बल दिया गया है। इस कथन के पीछे यह भाव है कि गुरु केवल मंत्र ही नहीं देते हैं, बल्कि इसके साथ वे अपने शिष्य में अपनी अध्यात्मिक ऊर्जाओं में से भी कुछ ऊर्जाओं का संचार कर देते हैं। जब इस कोई व्यक्ति मुद्रित पुस्तकों में मंत्रों को पढ़ता है तब प्रकार का शक्तिपात नहीं हो पाता। अब हमें इस ओर अधिक बोधगम्य तथा तर्क संगत रूप में समझने की चेष्टा करनी चाहिए। यदि हम किसी पुस्तक में कुछ आचार संहिताएँ पढ़ते हैं तो सम्भव है कि उनका हम पर कुछ प्रभाव पड़े। किन्तु, जब हम उन आचारगत उपदेशों को ऐसे व्यक्ति के मुख से सुनते हैं जिन्हें हम प्रेम और श्रद्धा करते हैं तो स्वभावतः उनका सर्वथा भिन्न प्रभाव पड़ेगा। इसी प्रकार, यद्यपि हम मंत्र दीक्षा द्वारा आध्यात्मिक ऊर्जा के संचार की वास्तविक प्रक्रिया को भले ही नहीं समझ पायें, तथापि हम कम-से-कम इतना तो समझ ही सकते हैं कि जलते हुए दिये से ही दूसरा दीया जल पाता है। किसी की आत्मा को प्रदीप्त करने के लिए किसी ऐसी आत्मा का होना आवश्यक है जो पहले ही प्रदीप्त हो चुकी हो। गुरु द्वारा शिष्य में शक्ति संचार का यही अर्थ है। इस प्रकार के जीवित सम्पर्क के बिना शक्ति संचार सम्भव नहीं है।

गुरु केवल मंत्र का ही नहीं, बल्कि इस ज्ञान का भी संचार करते हैं जिसे उन्होंने आध्यात्मि अनुभूति या उसी मार्ग के गुरु की अनुभूति से प्राप्त किया है और इसलिए सही रूप से शिष्य को शिक्षा देने में सक्षम हैं।

क्या आध्यात्मिक मार्ग में प्रगति के लिए सदैव गुरु के समीप जाना आवश्यक है ? प्रत्यक्ष रूप से यह एक व्यावहारिक प्रस्ताव है। गुरु के पास कुछ अनिवार्य गुण होने चाहिए जिनके बिना वह अज्ञानी का पथ प्रदर्शन नहीं कर सकता। पहली योग्यता यह है कि उसे निश्चयपूर्वक शास्त्रों का ज्ञाता होना चाहिए। किन्तु केवल पांडित्य से कोई गुरु नहीं होता। उसे परमज्ञानी, प्रबुद्ध होना चाहिए, उसे ऐसा व्यक्ति होना होगा जिसने सत्य की प्रत्यक्षानुभूति प्राप्त कर ली है। गुरु की दूसरी योग्यता यह है कि उसका आचरण दोष या कलंक से सर्वथा परे हो उसे दृढ़तापूर्वक शास्त्रीय आदर्शों के अनुरूप जीवन-यापन करना चाहिए। उसे सभी पापाचारों से मुक्त होना चाहिए तथा बिल्कुल पवित्र रहना चाहिए। अन्त में उसे पूर्णतः अकामहत होना चाहिए, शिष्य के साथ उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार का स्वार्थपूर्ण उद्देश्य नहीं होना चाहिए। उसे मंत्र प्रदान करने पर शिष्य से किसी प्रकार का लाभ प्राप्त करने की आकांक्षा से मुक्त रहना चाहिए। ये ही मुख्य गुण हैं जिन्हें किसी को गुरु के रूप में अंगीकार करते समय हमें ध्यान में रखना चाहिए।

शिष्य में किन गुणों का होना आवश्यक है? शिष्य को आध्यात्मिक आदर्श की खोज में उत्साही होना चाहिए। उसे मात्र ऐसा व्यक्ति नहीं होना चाहिए जो उपदेशों के अनुसरण द्वारा केवल अपने कौतूहल को शान्त कर लेना चाहता है। उसे गुरु द्वारा दिये गये उपदेशों को आचरण में ढालने के प्रति गम्भीर होना चाहिए। गुरु और शिष्य दोनों के प्रति चरित्र की शुद्धता पर समान रूप से जोर दिया गया है। सबसे बढ़कर शिष्य को निश्चयपूर्वक विनम्र होना चाहिए। उसे अहंकारी नहीं होना चाहिए। बिना गम्भीर श्रद्धाभाव के उसे न गुरु के समीप जाना चाहिए न उसका मूल्यांकन करना चाहिए। एक मात्र विनम्रता ही जिज्ञासु को ऐसा उपयुक्त बाहन बनाती है। जिसके द्वारा गुरु का ज्ञान वहन किया जा सकता है। विनम्रता, चाव, पवित्रता और सेवा भाव के बिना केवल गुरु से सम्पर्क द्वारा शिष्य लाभान्वित नहीं हो सकता। ऐसा नहीं है कि गुरु प्रसन्न हो इसलिए सेवा करनी चाहिए, बल्कि की गयी सेवा उसकी अपनी शुद्धता के लिए आवश्यक है जो शिष्य को गुरु के उपदेशों को ग्रहण करने के योग्य बनाती है। केवल गुरु के निर्देशों का निर्विवाद रूप से एवं अखण्ड श्रद्धा के साथ पालन करना चाहिए।

लेकिन क्या श्रद्धा का यह अर्थ है कि गुरु द्वारा कही गयी किसी भी बात को और हर बात को मान लेना चाहिए? कदापि नहीं। एक सच्चा गुरु आग्रह करेगा कि ऐसा नहीं करना चाहिए। श्रीरामकृष्ण ने स्वयं अपने शिष्यों को गुरु की बात को आंख मूँद कर मान लेने के विरुद्ध प्रबल परामर्श दिया था। उन्होंने कहा—"जो कुछ मैं कहता हूँ उन्हें निश्चित नहीं मान लो। जहां तक सम्भव हो अपनी समझ के अनुसार तुम्हें स्वयं उनकी जांच अवश्य करनी चाहिए। केवल जब तुम्हें वे अकाट्य एवं युक्तियुक्त लगे तभी उनका अनुसरण करो, अन्यथा नहीं।" श्रद्धा का निश्चित रूप से यह अर्थ नहीं है कि जब हम गुरु के उपदेशों का अनुसरण करें तब हमें अपनी सारी बुद्धिमत्ता का तिरस्कार कर देना होगा। लेकिन यह भी जरूरी है कि संदेह भी मन से, ऐसे मन से जो संदेह से दूषित हो गया हो कभी भी पालन नहीं करना चाहिए। ऐसा मन गुरु के उपदेशों के महत्व को कभी नहीं समझ सकता। इसी से श्रीरामकृष्ण कहते हैं: "अपने गुरु की जितनी परीक्षा कर सकते हो कर लो लेकिन एक बार जब तुम्हें यह विश्वास हो गया कि वस्तुतः वे हमें परम लक्ष्य तक ले जाएँगे तब बिना किसी प्रतिकार या शर्त के उनकी अधीनता स्वीकार कर लो।" गुरु के पास इसी प्रकार की श्रद्धा के साथ जाना चाहिए। और ऐसे ही गुरु हमें परम लक्ष्य तक ले जा सकते हैं।

एक प्रश्न पूछा जा सकता है, "हमलोग अभी दूसरों को आंकने में सक्षम नहीं हैं। हमारा मन अभी स्पष्ट नहीं है। हमलोग संदेह और कठिनाइयों से मुक्त नहीं हैं। फिर हमलोग कैसे अपने गुरु को आंक सकते हैं जो हमसे काफी ऊँचे हैं?" उत्तर है कि जहां तक सम्भव हो गुरु के शुद्ध अभिप्राय का पता लगा लो। स्वयं देख लो कि क्या वे तुम्हारे आदर्श के रूप में आचरण कर सकते हैं, तभी उन्हें स्वीकारो। जब तुम उन्हें स्वीकार करते हो तो पूरे मन से स्वीकारो, नहीं तो तुम्हारा संदेही मन सर्वदा कठिनाई उत्पन्न करेगा।

विज्ञान और मानवीय मूल्य

—श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज

अनुवादक : डॉ० सुरेश चन्द्र शर्मा (ग्वालियर)

[इण्डियन केबुल्स के अभियन्ता उद्योगमण्डल, पूर्वी क्षेत्र के सदस्यों की विशिष्ट सभा में पूजनीय श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज ने 'साइन्स एंड ह्यूमेन वैल्युज' विषय पर जो सारगर्भ व्याख्यान दिया था उसका हिन्दी अनुवाद पाठकों के हित के लिए हम इस अंक से क्रमशः प्रकाशित करेंगे। —सं०]

१. भौतिक प्रकृति एवम् मानव प्रकृति का विज्ञान

मेरी समझ में नहीं आता कि "विज्ञान और मानवीय मूल्य" इन दोनों को हम पृथक क्यों करते हैं। यह पाश्चात्य अनुभव का फल है और हमारे देशवासी केवल उसी में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं और न कि अपने निजी भारतीय अनुभव में। पश्चिम में, विज्ञान का अर्थ था वाह्य भौतिक प्रकृति का विज्ञान, पदार्थ या जड़ जगत का विज्ञान। मनुष्य, ज्ञाता को जो प्रकृति का अध्ययन करता है, उसे डेकार्ट के समय से, विज्ञान के क्षेत्रों से अलग कर दिया गया और इस प्रकार हमें एक पाश्चात्य वैज्ञानिक विरासत प्राप्त हुयी हैं जहाँ मानव के आंतरिक जगत के अध्ययन को कोई भूमिका नहीं हैं; और हम आज देख रहे हैं कि आधुनिक सभ्यता को सताने वाली सभी समस्यायें इस मानवीय कारक की उपेक्षा से उत्पन्न होती हैं। विज्ञान स्वयं निश्चित मानवीय मूल्यों पर आधारित है, जैसे सत्यानुराग एवम् उसकी खोज तथा डार्विन के सहयोगी थॉमस हक्सले जैसे वैज्ञानिकों ने अन्य मानवीय मूल्य भी जोड़ दिये हैं जैसे मानव दुखों की निवृत्ति। और विज्ञान एवम् तकनीकी की सहायता से मानव दुख के अनेक क्षेत्रों को नियंत्रित कर लिया है; परन्तु कुल मिलाकर देखा जाये, तो विज्ञान ने मानव तत्व की अवहेलना की है।

बहुत से वैज्ञानिकों द्वारा वास्तविकता को न केवल भौतिक जगत, इन्द्रिया ज्ञान का विषय, अपितु ज्ञाता या जानने वाला या आत्मा सहित सत्य को समग्र समझकर इस भूल को सुधारा जा रहा है। विज्ञान, वाह्य जगत का तो अध्ययन करता है परन्तु दृष्टा की उपेक्षा करता है। और आज का पाश्चात्य विज्ञान अपना ध्यान मनुष्य, ज्ञाता की ओर मोड़ने और इस प्रकार भौतिक प्रकृति के विज्ञान से मानव प्रकृति के विज्ञान पर उठने को आवश्यक समझ रहा है। नाभिकीय भौतिकी में होने वाली यह एक अद्भुत प्रगति है। व्यावहारिक दृष्टि से, विज्ञान ने मनुष्य के बहुत से दुखों को कम कर दिया है, परन्तु नये दुखों को जोड़ भी दिया है। उच्च वैज्ञानिक दृष्टि से समुन्नत देशों में आप यही पाते हैं। यदि हमारे भारतीय व अफ्रीकी समाजों में

गरीबी तथा पिछड़ापन है, तो उनके पाश्चात्य समाज में अन्य प्रकार की परेशानियाँ हैं। मनुष्य का अपूर्णता बोध ही वहाँ सर्वाधिक है। अतः यदि आधुनिक विज्ञान यह विचार करना आरम्भ करता है कि उन्नत समाज में मानव की दशा को कैसे सुधारा जाय तो उन्हें यह प्रश्न करना है क्या ऐसा कोई अन्य विज्ञान है जो मानव के इन नये दुखों की विवेचना कर सके? यही वह प्रश्न है जो उन्हें भौतिक प्रकृति से मानव प्रकृति के विज्ञान के नये विकास को समझने के लिये भारत ले आता है जिसका विकास हमारे देश में अति प्राचीन काल में ही हो गया था। उस विज्ञान ने मनुष्य को गहराई से समझा था, जिससे महान मूल्यों का प्रादुर्भाव हुआ। और हमने बहुत प्रारम्भ से ही समझ लिया था कि मूल्य वस्तुओं तथा वाह्य प्रकृति से नहीं आते बल्कि मानव स्वभाव की गहराईयों से आते हैं। मूल्य वृक्षों से, पृथ्वी से या यंत्रों से कभी नहीं आते, बिल्कुल नहीं। भारत में, हमने इसे प्रारंभ से ही समझ लिया है कि मूल्य मानव चेतना की गहराई से वाह्य प्रकृति मानव जीवन एवम् कार्य तथा अन्तर्मानवीय सम्बन्धों के विवेकपूर्ण दोहन से प्राप्त होते हैं आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा भी यही कहा जा रहा है। आधुनिक काल के एक श्रेष्ठ चिंतक थे वर्टेण्ड रसेल। युद्धोपरांत व्याख्यानों की उनकी पुस्तक—Impaot of Science on Society में मूल्यों की विवेचना पर एक महत्वपूर्ण पदच्छेद है। वे कहते हैं (पृष्ठ-७७) :

"आराध्य के रूप में यंत्र शैतान का आधुनिक रूप है और उसकी पूजा आधुनिक पैशाचिकता है ···। अन्य कुछ भी यांत्रिक हो सकता है, मूल्य यांत्रिक नहीं है और इसे किसी राजनैतिक दार्शनिक को नहीं भूलना चाहिये।"

मूल्य मानव स्वभाव की गहनता के अध्ययन एवं मनन से प्रादुर्भाव होते हैं। प्रेम, करुणा, सेवा की भावना, समर्पण तथा शांतिप्रियता ये सब मनुष्य के ही भीतर से आते हैं। वाह्य भौतिक पर्यावरण एवम् आन्तरिक मानसिक पर्यावरण का थोड़ा सा परिवर्तन आवश्यक है, जिसमें से चारित्रिक ऊर्जा का उद्भव होगा, केवल यही गरीबी तथा मानव की दयनीय दशा को दूर करने में हमारी सहायता करेगी। तब स्वयं मनुष्य के भीतर से मूल्य प्रकट होने लगते हैं। अब यह निष्कर्ष जिस पर भारत युगों पूर्व पहुँच चुका था आज इस आधुनिक युद्धोपरांत काल में महान वैज्ञानिकों द्वारा बार-बार दुहराया जा रहा है।

एक सत्य जिसे भारत में हमें ध्यान रखना ही चाहिये वह यह है; हमारी शिक्षा प्रमुख रूप से पाश्चात्य अनुभव एवम् राष्ट्रीय विरासत से परिचित नहीं हैं। एक ऐसा पाश्चात्य अनुभव है—भौतिक विज्ञान एवं धर्म के बीच कालव्यापी संघर्ष। पाश्चात्य अनुभव के आधार पर विद्यालय एवं महाविद्यालय में हम जो सब कुछ पढ़ते हैं वह है कि धर्म और विज्ञान में सनातन विरोध है। उनको कभी भी समन्वित नहीं किया जा सकता। परन्तु जब आप अपने स्वयं के इतिहास की ओर मुड़ें तो विज्ञान और धर्म के बीच कभी विरोध नहीं पायेंगे। क्योंकि भारत में, धर्म को भी एक विज्ञान, मानव प्रकृति के एक गहन विज्ञान के रूप में अथवा दिवंगत जीवशास्त्री सर जुलियन हक्सले के चुने हुये मुहावरे "मानव संभावनाओं के विज्ञान" के रूप में विकसित किया गया था। जब उन्होंने उपनिषदों में इस खोज को प्रारंभ किया तो उन्होंने इस मानव व्यक्तित्व के अद्भुत आयामों को खोजा एवम् आप जितने ही गहरे जाते हैं, उतने ही अद्भुत मूल्य इस मानव प्राणी के भीतर से अभिव्यक्त होते हैं।

इस भारतीय पद्धति का ज्ञान, दुर्भाग्य से हमारी शिक्षा के माध्यम से हम तक नहीं पहुँचा है। पहली बात तो हमारे देशवासियों को आज समझनी चाहिये वह यह है कि विज्ञान और धर्म न तो विरोधी हैं और न होने चाहिये अपितु परिपूरक हैं। हम

भौतिक प्रकृति एवं बाह्य पर्यावरण जिसमें हम रहते हैं, का अध्ययन करते हैं, तथा उस अध्ययन का फल वह है जिसे हम भौतिक विज्ञान के नाम से पुकारते हैं। हम मानव प्रकृति का अध्ययन करते हैं एवम् उस अध्ययन का फल वह है जिसे हम धर्म विज्ञान की संज्ञा देते हैं इस प्रकार हमने एक दूसरे में कोई विरोध नहीं पाया; क्योंकि दोनों ही विज्ञान हैं एवं दोनों में ही सत्य की कठोर साधना की आवश्यकता है। यहां तक कि इस आधुनिक समय में भी आप देख रहे हैं कि हमारी संस्कृति, धर्म और दर्शन की विरासत कभी भी विज्ञान का विरोध नहीं करती, उसके विपरीत यह उसका स्वागत करती है। हमारी धर्म विज्ञान की अवधारणा के अनुसार ये दोनों एक दूसरे के सहगामी हैं। हमें विज्ञान चाहिये और बहुत विज्ञान चाहिये। यूरोप और अमेरिका में आप यह नहीं पाते। वहाँ पर सतत् संघर्ष था और आज भी है। १५ वीं और १६ वीं शताब्दियों में, आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियों के प्रारम्भ से और १९वीं शताब्दी के अन्त तक, विज्ञान को अपना मार्ग धार्मिक संस्थाओं एवं सिद्धांतों के विरोध एवं अत्याचार में से होकर बनाना पड़ा था। आज वह विरोध समाप्त हो गया है क्योंकि वहाँ अधिकांश लोग मतों पर आधारित धर्म की पद्धति में अपनी अभिरूचि खो बैठे हैं। पश्चिम में, लोग केवल विज्ञान पर ध्यान देते हैं तथा वह दृष्टिकोण आज विश्व भर में व्याप्त हो गया है। भारत में, हमने भी अब आधुनिक विज्ञान को स्वीकार कर लिया है, परन्तु हमारे देशवासियों को यह भी स्मरण रखना चाहिये कि विज्ञान की यह स्वीकृति हमारी संस्कृति की विरोधी नहीं है अपितु हमारी संस्कृति के अनुरूप है। हमने भी भौतिक विज्ञान का विकास किया था। हमने भी भौतिक विज्ञान की तकनीक के अनेक पक्षों को विकसित किया था। परन्तु हमने कभी भी इसे मानव प्रकृति के गहन आयामों, मानव व्यक्तित्व के गहन आयाम का विरोधी नहीं समझा।

हमारे वेदान्त दर्शन एवं अध्यात्म का यह एक विश्वस्तरीय महत्व का महान योगदान है जो भौतिक प्रकृति के विज्ञान एवम् मानव प्रकृति के विज्ञान को सम्पूर्ण सत्य के समग्र विज्ञान के रूप में समन्वित करता है इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं वेदान्त की इस सामग्रिकता की रोमा रोला ने अपनी पुस्तक Life of Vivekanand (पृष्ठ १९६) के दो पदच्छेदों में प्रशंसा की है : "यथार्थ वेदान्ती भावना पूर्व निर्धारित विचारों की प्रणाली से आगे नहीं बढ़ती। धर्मों में पालनीय तथ्यों एवं उनके सह-संयोजन हेतु प्रतिपादित विविध परिकल्पनाओं के सन्दर्भ में इसमें पूर्ण स्वातंत्र्य एवं अतुलनीय साहस विद्यमान है। पौरोहित व्यवस्था द्वारा कभी भी अवरुद्ध हुए बिना प्रत्येक व्यक्ति ब्रह्माण्ड के स्वरूप की आध्यात्मिक व्याख्या कहीं भी खोजने के लिये पूर्ण रूप से स्वतन्त्र रहा है। जैसा कि विवेकानन्द ने अपने श्रोताओं को स्मरण कराया था कि ऐसा भी समय था जबकि आस्तिक, नास्तिक एवं घोर जड़-वादी साथ-साथ बैठकर अपने सिद्धांतों का प्रचार करते हुए एक ही मंदिर में देखे जा सकते थे।"

आगे (पृष्ठ २८९) "परन्तु उनकी शांत स्वाभिमानता के लिये, जो स्वयं को शक्तिशाली समझते हैं, एक उपेक्षा की बात है कि विवेकानन्द के शाब्दिक अर्थ के अनुसार विज्ञान स्वतन्त्र धर्म को स्वीकार करे या न करे, उनका धर्म विज्ञान को स्वीकार करता है। वह इतना विशाल है कि इसमें सभी सच्चे सत्यान्वेशियों के लिये स्थान हैं।"

हमारा सम्पूर्ण अध्ययन ही सत्य की एक खोज रहा है, जिसे हमने देखा कि दो दृष्टिकोणों से समझा जा सकता था अर्थात् इंद्रियों के स्तर पर भौतिक प्रकृति से तथा इंद्रियातीत स्तर पर मानव प्रकृति से। एक को लोक कहते हैं तथा दूसरा लोकोत्तर कहलाता है। ये हमारे ऋषियों द्वारा गढ़े हुये तकनीकी शब्द है। लोक का अर्थ है पांच इंद्रियों से जाना जाने वाला। यह भौतिक विज्ञान के

अध्ययन का क्षेत्र है, इन्द्रिय विषयों का अध्ययन। परन्तु इन्द्रिय स्तर से परे क्या हैं—एक बहुत गहन प्रश्न है। ४००० वर्ष पूर्व भारत ने उपनिषदों में इसी का अध्ययन किया। भारत के मनीषी एवं महात्माओं ने पहले लोक या इन्द्रियगोचर विज्ञान को विकसित किया। परन्तु उस अध्ययन के परिणाम से वे सन्तुष्ट नहीं थे। सत्य पर फिर भी प्रश्न चिह्न लगा रहा फिर उन्होंने अपना ध्यान इन्द्रिय स्तर से परे की ओर मोड़ा। इन्द्रिय स्तर से उन्होंने सत्य के प्रचण्ड आयामों का अनुभव किया और उसे उन्होंने सत्य लोकोत्तर आयाम की संज्ञा दी। वेदांत और बौद्ध दर्शन दोनों में, आप लोक और लोकोत्तर ये दो संक्षिप्त, वैज्ञानिक शब्द पाते हैं। जब आप दोनों का अध्ययन करते हैं तभी केवल आप सत्य के सामग्रिक एवं अखण्ड ज्ञान को पाते हैं। अन्यथा यह केवल आंशिक ज्ञान होगा। इसी कारण भारत में, हमने विज्ञान और धर्म तथा धम और धर्म के बीच यह निरन्तर विरोध कभी नहीं रखा, क्योंकि हमें यह सामग्रिक दृष्टिकोण प्राप्त था कि विज्ञान एक है। इसके दो विभाग हो सकते हैं वाह्य प्रकृति और आन्तरिक प्रकृति, परन्तु विज्ञान कभी भी दो या तीन नहीं हैं। जगत का सत्य क्या है मानव प्रकृति का सत्य क्या है? यही हमारी पद्धति थी और हमारे ऋषियों ने एक वैज्ञानिक प्रशिक्षित मन से इसे खोजा, इसे पाया।

यही सम्पूर्ण वैज्ञानिक विधि है। अतः सभी प्रकार के भौतिक विज्ञान सत्य के केवल एक ही आयाम का ज्ञान है। उपनिषदों में जिसे हमने अपराविद्या कहा है। विद्या का अर्थ है विज्ञान या ज्ञान। वस्तुतः स्वयं विज्ञान शब्द का ही अर्थ है मान्यता (Opinion) से भिन्न केवल ज्ञान। लोगों ने विज्ञान शब्द को कुछ रहस्यात्मक बना दिया है। परन्तु, विज्ञान का वास्तविक अर्थ होता है केवल ज्ञान, तथ्यों के युक्तिपूर्ण अध्ययन द्वारा प्राप्त ज्ञान, निष्कर्ष प्राप्त करना एवं उन्हें शास्त्रीय विज्ञान के अनुसार उनका सत्यापन करना, उनको मिथ्या सिद्ध करने वाली कसौटी पर कसना जैसा कि कार्ल पॉपर ने अपनी पुस्तक Logic of Scientific discovery में परिभाषित किया है तथा थामस एस० कुहन के अनुसार (The Structure of Scientific revolutions) नये आदर्शों द्वारा पुराने आदर्शों के विस्थापन द्वारा नये वैज्ञानिक सिद्धांत अतः हमारे पास विद्या का एक आयाम यह भौतिक विज्ञान है। हम इसे अपर विद्या इन्द्रिय ज्ञान पर आधारित सामान्य ज्ञान कहते हैं। दूसरी है पराविद्या उच्च ज्ञान जो आपको इन्द्रिय स्तर से परे ले जाता है।

यह विलक्षण विचार है। यह वर्गीकरण आप मुण्डक उपनिषद में पाते हैं जहाँ जब एक शिष्य गुरु के पास जाता है और कहता है, "भगवान मुझे शिक्षा दीजिये" गुरु कहता है "जानने योग्य दो विद्याएँ हैं एक तो अपरा कहलाती है तथा दूसरी परा है। और अपरा क्या है? दृश्य का वाह्य प्रकृति के नित्य परिवर्तनशील जगत का सम्पूर्ण ज्ञान जिसे आज आप इन्द्रिय ज्ञान पर आधारित यथार्थ विज्ञान कहते हैं। और परा विद्या क्या है? सत्य के अविनाशी आयाम का विज्ञान—यथा तदक्षरम अधिगम्यते, जिसके द्वारा उस अक्षर अविनाशी को जाना जाता है।' यह जगत परिवतनशील है। इसका अध्ययन हम भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र एवं अन्य इन्द्रिय ग्राह्य विज्ञान के अन्तर्गत करते हैं। निस्संदेह यह एक अद्भुत विज्ञान है। परन्तु इससे समग्र सत्य का ज्ञान नहीं होता। इसलिए, उपनिषदों में हमने सत्य के अपरिवर्तनशील आयामों, मानव प्रकृति की गहनता के विज्ञान, ईश्वर के विज्ञान को विकसित किया। खुली जिज्ञासा, खोज एव सत्यापन से उत्पन्न सम्पूर्ण जानकारी ही विज्ञान है, यह सिद्धांत या मत नहीं है। उपनिषद के ऋषियों ने जब मानव प्रकृति का अध्ययन किया तो उन्होंने प्रत्येक मनुष्य में इन्द्रियों के परे एवं मन के परे एक गहन आयाम के रूप में आध्यात्मिक आयाम की

खोज को उन्होंने प्रत्येक मनुष्य में एक अनन्त दिव्य-शक्ति के प्रचण्ड केन्द्र को प्रसुप्तावस्था में पाया जिसे उन्होंने आत्मा कहा। इस विज्ञान को अध्यात्म विद्या, मनुष्य की गहनता का विज्ञान कहा और इसे ही उपनिषदों में विशुद्ध अध्यात्म, मानव व्यक्तित्व के आध्यात्मिक आयाम के विज्ञान के रूप में विकसित किया गया सभी मूल्य इन्द्रिय स्तर से परे इन्हीं आयामों से आते हैं इन्द्रिय स्तर पर मनुष्य को देखें। वहाँ से आप क्या मूल्य प्राप्त करते हैं? अन्य मनुष्यों के साथ तथा प्रकृति के साथ टकराव। इन्द्रिय स्तर पर वस्तुत: मूल्यों के लिये कोई स्थान ही नहीं है। मूल्य इन्द्रियों के परे के स्तर से प्राप्त होते हैं। वे उस उच्च स्तर से इन्द्रिय स्तर के अनुभव पर अभिव्यक्त होते हैं। जब उस स्तर को उत्प्राणित किया जाता है तो प्रेम, परोपकार, सत्यान्वेषण एवं सेवा भाव जैसे मूल्य स्वयमेव जीवन में अभिव्यक्त होते हैं।

अब आज का भौतिक विज्ञान इन मूल्यों के लिये कोई स्वीकृति नहीं देता, विज्ञान उदासीन है, वे कहेंगे। बिल्कुल सही है। भौतिक विज्ञान उदासीन है। यह किसी प्रकार का मूल्य निर्णय प्रदान नहीं करता। एक वैज्ञानिक मूल्य निर्णय दे सकता है; परन्तु स्वयं विज्ञान में किसी प्रकार की मूल्योन्मुखता के लिये कोई स्थान नहीं हैं। आप नाभिकीय विज्ञान का विकास कर सकते हैं जिसमें से आप नाभिकीय औषधियाँ अथवा नाभिकीय शस्त्र का निर्माण कर सकते हैं। इस संबंध में स्वयं उसका कोई कथन नहीं है। इसका निर्णय करने वाला स्त्री हो या पुरुष वह वैज्ञानिक है। यदि वैज्ञानिक मूल्योन्मुखी है तो वह स्त्री या पुरुष उसका स्वस्थ प्रयोजनों के लिये प्रयोग करेगा। इसलिए आज, वैज्ञानिक जगत में भेद है—एक वर्ग जो अभी भी १९ वीं शताब्दी के विज्ञान के जड़वाद का समर्थक है, जिसमें वे हैं जो यह कहते हैं कि नाभिकीय ऊर्जा का उपयोग विध्वंसकारी उद्देश्यों के लिए करना चाहिये; दूसरा वर्ग उससे बचना चाहता है तथा उसका उपयोग केवल मानव कल्याण के लिये करना चाहता है। ये वैज्ञानिक मूल्यों के निर्णयों के स्तर तक उठ गये हैं; उन्होंने मानव प्रकृति की गहनता के विज्ञान के फल का कुछ अनुभव पा लिया है। परन्तु विज्ञान स्वयं मूल्य निरपेक्ष हैं।

"कितने सौभाग्य से यह जन्म मिला है, भगवान को खूब पुकारे जाओ। परिश्रम करना पड़ता है। परिश्रम किये बिना कुछ होता है क्या? संसार के कार्यों के बीच भी थोड़ा समय निकाल लेना चाहिए।"

—श्री माँ सारदा देवी

"हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिससे चरित्र निर्माण हो, मानसिक शक्ति बढ़े, बुद्धि विकसित हो और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा होना सीखे।"

—स्वामी विवेकानन्द

कल्पवृक्ष की छाया है रामकथा

स्वामी भास्करानन्द,
चिन्मय मिशन, रांची

रामकृष्ण मिशन, रांची में श्री रामकृष्ण जयन्ती के अवसर पर दिया गया रामचरित मानस पर प्रवचन का सरांश)

श्री राम गाथा कल्पवृक्ष की छाया है जिसके निकट जो भी आता है उसके दुख दूर हो जाते है क्योंकि तब तमोगुण का नाश होता है और सुख शान्ति की प्रतीक सीता उपलब्ध होती है।

इस कल्पवृक्ष की छाया के निकट आने का तात्पर्य है कि हम पढ़ें रामकथा, सुने रामकथा लेकिन देखें अपने को उस दर्पण में। यही स्वाध्याय हमारे जीवन में उपलब्ध करा सकता है सुख शान्ति।

जीवन को दो विचार धाराएँ—रावण की विचार धारा जो भौतिकवादी है और दशरथ की विचार धारा जो ईश्वरवादी है रावण की विचार धारा पर चलकर जो शांति पाना चाहते हैं वे बर्बाद हो जाते हैं।

रावण के यहां दो भाई हैं और उनमें संघर्ष होता है। उधर दशरथ के यहाँ भी दो भाई हैं लेकिन संघर्ष होने की सारी परिस्थितियाँ मौजूद रहते हुए भी संघर्ष नहीं होता, राम राज्य स्थापित हो जाता है। रामकथा हमें यही बताती है कि जिस मार्ग पर चलकर हमारा उत्थान होता है उसे अपनाना चाहिए और जिससे अवनति होती है उसे त्याग देना चाहिए। श्रीराम समन्वयवाद लेकर आते हैं, वे परा विद्या और अपरा विद्या दोनों के समन्वय हैं। रामचरित मानस हमारे पूर्वजों का इतिहास हैं। आज के इतिहास में मूल्यों का स्थान नहीं है, लेकिन हमारे इतिहास में मूल्यों को प्रश्रय प्राप्त है। इसलिए जिस घर में रामकथा को स्थान मिलेगा वहाँ तमोगुण का अवश्यमेव नाश होगा।

भौतिकवादी विचारधारा का आधार है विज्ञान जिसने हमारे लिए काफी सुख सुविधा की सामग्री जुटायी है। लेकिन उन सुख सुविधाओं का उपयोग किस प्रकार किया जाए इसका पता भौतिकवादी विचारधारा हमें नहीं दे पाती और हमें उस विचारधारा की ओर उन्मुख होना पड़ता है जिसका प्रतिनिधित्व दशरथ की विचारधारा करती है। ईश्वरवादी विचारधारा अगर विवेक बुद्धि पर आधारित नहीं होती है तो मतान्धता का जन्म होता है और फिर वह भी त्याज्य हो जाती है। इसलिए दोनों विचारधाराओं के बीच समन्वय लेकर आते हैं मर्यादा पुरूषोत्तम राम जो अयोध्या को बिदेह नगर से जोड़ते हैं। जीवन में सुख शान्ति पाना हो तो विदेह की यात्रा करनी पड़ती है।

लोक-कल्याण प्रेरित कर्म से उपब्ध होती है सीता। सीता को पाना शांति उपलब्ध होना है, लेकिन यह सीता तब तक उपलब्ध नहीं होती जब तक अनासक्त भाव से दूसरों के कल्याणार्थ कर्म न किया जाय। सीता की खोज शाश्वत खोज है और उन्हें ही सीता मिलती है जो राजा जनक की तरह अनासक्त भाव से समाज कल्याण हेतु कर्मशील होते हैं। जो दसमुख (रावण) का तरीका अपनाते हैं उन्हें सीता की छाया तक उपलब्ध नहीं होती। सीता उन्हें ही प्राप्त होती है जो दशरथ और जनक का रास्ता अपनाते हैं। जनक जी की सीता अपनी पत्नी से उपलब्ध नहीं हुई थी, बल्कि लोक कल्याण हेतु निर्वस्त्र होकर अर्थात् कर्मशील होने पर उपलब्ध हुई थी। यह सिर्फ त्रेतायुग की बात नहीं है। आज भी सीता को अर्थात शांति को पाना हो तो अनासयुक्त होकर समाज के प्रति, देश के प्रति अपने दायित्वों का पालन करना होगा। चाहे कोई दुराचारी हो या सदाचारी सभी के जीवन का एक ही लक्ष्य है सीता और राम को पाना अर्थात शान्ति और सुख की प्राप्ति। पर दोनों का तरीका अलग हो जाता है। दुराचारी रावण का तरीका अपना लेता है। और सदाचारी दशरथ का तरीका अपनाता है। इसलिए दुराचारी को सीता की छाया भी उपलब्ध नहीं होती जबकि जो दशरथ के रास्ते पर चलते हैं उन्हें राम और सीता दोनों की उपलब्धि हो जाती है। क्योंकि जहाँ सीता है वहीं राम है, जहाँ राम हैं वहाँ सीता है। जहाँ शान्ति है, वहीं सुख है, जहाँ सुख है वहीं शान्ति है।

श्रीराम का अपना तरीका है सीता को पाने का श्रीराम विश्वमित्र के साथ चलकर सीता को पाते हैं। परमज्ञानी विश्वमित्र लोक कल्याण हेतु, समाज को रावण के प्रतिनिधि ताड़का और उसके दो पुत्रों मारीच और सुबाहु से त्राण दिलाने के लिए दशरथ के पास पहुँचते हैं और उनसे श्रीराम को मांग लेते हैं। श्री राम जब ताड़का का वध करते हैं तब जनकपुर पहुँचते हैं सीता को पाने के लिए। ताड़का जीवन में अशान्ति उत्पन्न करने वाली रावण के रास्ते पर चलने वालों की प्रतिनिधि है और यह बेटी है दुराशा की। जबतक व्यक्ति के मन में दुराशा है तो मान लेना चाहिए कि मन की ताड़का जीवित है और जब तक मन की ताड़का जीबित है विदेह नगर नहीं पहुँचा जा सकता और विदेह नगर पहुँचे बिना सीता उपलब्ध नहीं हो सकती।

अहंकार का धनुष टटे तब उपलब्ध होती है सीता : जिसके मन की दुराशा मिट जाए, जीवन की अहिल्या चैतन्य हो जाए, अहंकार का धनुष तोड़कर व्यक्ति निरहंकारी हो जाए तो उसके जीवन में सीता उपलब्ध हो जाती है, सुख शान्ति मिल जाती है उसे और उस व्यक्ति के सन्निध्य में रहने वालों को भी सीता की छाया प्राप्त हो जाती है। मात्र दुःख का अभाव सुख नही है। क्योंकि सुख का सम्बन्ध मन की शान्ति से है।

लेकिन शान्ति कैसे मिले ? जीवन की अनन्त यात्रा में सीता कैसे उपलब्ध हो ? एक तरीका श्री राम ने बताया है। इस अनन्त यात्रा में विश्वामित्र (ज्ञानी पुरुष) का संग मिलना चाहिए, मन की ताड़का (दुराशा) का वध करना चाहिए, अहिल्या (बुद्धि) को चैतन्य करना चाहिए और तदुपरान्त अहंकार का टूटना चाहिए, तब जाकर सीता (शान्ति) का वरण किया जा सकता है।

अहिल्या उद्धार के प्रसंग में जरा अपने जीवन से रामकथा को थोड़ा जोड़कर देखें कि हमारे जीवन की अहिल्या कौन है ? हमारी मति, हमारी बुद्धि ही हमारे जीवन की अहिल्या है। मन की दुराशा को खत्म करने के बाद अपनी जड़ बुद्धि को चैतन्य करना पड़ता है तब विदेह नगर नजदीक हो जाता है। जिस दिन बुद्धि जाग जाती है व्यक्ति देह स्तर से ऊपर उठ जाता है, वह समझ जाता है कि यह देह सत्य नही बल्कि भ्रान्ति है। यह देह स्तर से ऊपर उठ जाना ही विदेह नगर पहुँचना है। लेकिन मात्र विदेह नगर पहुँच ज ने से ही सीता उपलब्ध नही हो जाती। सीता से मिलने के लिए शिव का धनुष तोड़ना पड़ता है। यह शिव का धनुष हमारे जीवन में अहंकार का धनुष है। अहंकार अर्थात् वह सब कुछ जिससे हमने अपना व्यक्तित्व बना रखा है, जब तक नहीं टूटता मन की शान्ति उपलब्ध नहीं होती। हमारा अहं ही सारे दुःखों का कारण है इसलिए इसका क्षय करना पड़ता है। जब तक अहंकार का धनुष नहीं टूटेगा तब तक सीता नही मिलेगी और अहंकार तभी टूटेगा जब जीवन की अहिल्या चैतन्य होगी। अहंकार का धनुष टूटने पर इसके साथ संशय दूर होता है, पाश्चाताप मिटता है, धन-जन का गर्व सब कुछ समाप्त हो जाता है और तब उपलब्ध होती है मन की शान्ति जो मानव जीवन की अनन्त यात्रा का लक्ष्य है।

★

लेन देन ही संसार का नियम है और यदि भारत फिर से उठना चाहे, तो यह परमावश्यक है कि वह अपने रत्नों को बाहर लाकर पृथ्वी की जातियों में बिखेर दें, और इसके बदले में वे जो कुछ दे सकें उसे सहर्ष ग्रहण करें। विस्तार ही जीवन है और संकोच मृत्यु।

स्वामी विवेकानन्द

ब्रह्मामृत पाठ-योग

ठाकुर, मुझे भी यह कहिए !

(श्रीरामकृष्णदेव की उपासिका श्रीमती सुदेश द्वारा संकलित)

आपने मास्टर महाशय से यह कहा :

'भगवान न करे : भला तुम संसार का त्याग क्यों करोगे ? गुरु को ढूँढ़ लेने पर क्या तुम अपने को धन्य नहीं समझते ? गुरु की कृपा से, जो समस्त कल्पनाओं या सपनों से परे हैं, उसे भी आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।'

हे ठाकुर, मुझ पर कृपा कीजिए और मुझे भी यह कहिए।

आपने बाबूराम से यह कहा :

'तुम मुझसे क्या चाहते हो ? जो कुछ भी मेरे पास है, क्या वह सब तुम्हारा नहीं है ? हाँ, मैंने जो कुछ भी आध्यात्मिक अनुभूति के रूप में अर्जित किया है, वह सब तुम्हीं लोगों के लिए है। इसलिए, माँगने का विचार छोड़ो, जो दूरी खड़ी कर पराया बना देता है। बल्कि मुझसे एक निकट सम्बन्धता का अनुभव करो और पूरे खजाने की चाभी पा लो।'

हे दयामय ठाकुर, कृपया मुझसे भी यह कहिए।

आपने योगीन्द्रनाथ से यह कहा :

शिष्य का हाथ पकड़ कर उन्होंने कहा : 'तुमने विवाह कर लिया तो क्या हुआ ? क्या मैंने भी विवाह नहीं किया है ?' ..... अपनी छाती को छूते हुए उन्होंने कहा : यदि यह (वे स्वयं) प्रसन्न है तो एक लाख विवाह भी तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। यदि तुम गृहस्थ का जीवन जीना चाहते हो तो एक दिन अपनी पत्नी को यहाँ ले आओ और मैं उसे तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति की सच्ची संगिनी बना दूँगा। लेकिन यदि तुम एक संन्यासी का जीवन यापन करना चाहते तो तब मैं तुम्हारी सांसारिक आसक्ति को समाप्त कर दूँगा।'

मेरे प्रिय ठाकुर, मुझे भी यह कहिए।

आपने मास्टर महाशय से यह कहा भाग : २, पृ० २२४) :

श्रीरामकृष्ण—'एक दिन मैंने सोचा कि सब के यहाँ एक-एक बार जाऊँगा– क्यों ?

मास्टर—'जी हाँ, बड़ी कृपा होगी।'

ठाकुर, क्या मुझे भी आप यह नहीं कहेंगे ?

आपने अधर सेन के सम्बन्ध में कहा (२।४७८) :

'अधर सेन— अगर काम घट जाता ....'

मैं प्रार्थना करती हूँ, मेरे विषय में भी यह कहिए ।

आपने नरेन्द्र से यह कहा (३।२६-२७) :

श्रीरामकृष्ण कमरे में जाकर नरेन्द्र के पास खड़े हुए और बोले, "मैं आया हूँ ।"

मुझसे भी यह कहिए ।

आपने मास्टर महाशय से यह कहा (२।१६७-६८) :

श्रीरामकृष्ण—"..... ..... तुम्हारी भी इच्छा स्वयं के लिए कोई धन संचय करने की नहीं है—ठीक है—तुम्हें तो केवल अपने कुटुम्ब के निर्वाह के लिए ही चिन्ता है- नहीं सचमुच वे और कहाँ जायँ ?"

मणि—'यदि कोई उनकी जिम्मेदारी ले ले तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँ ।'

श्रीरामकृष्ण—"तुम्हारा कुछ कर्म अभी बाकी है । उतना हो जाने पर शान्ति होगी, तब तुम्हें वह छोड़ देगा .... ।"

हे दयामय ठाकुर । मुझे भी यह कहिए, मुझे भी यह आश्वासन दीजिए ।

●

प्रेरक प्रसंग

स्वामी विवेकानन्द जापान की यात्रा पर थे । एक दिन स्वामीजी बाजार में एक दुकानदार से आम खरीद रहे थे । दुकानदार ने स्वामीजी को कुछ सड़े हुए आम भी दे दिए । स्वामी दुकान से आम लेकर चल दिये । वह अभी कुछ दूर ही गये थे कि एक बालक उनके पास आया और बोला, "उस दुकानदार ने आपको कुछ खराब आम दे दिये हैं । कृपया वे आम आप मुझे दे दें और ये बढ़िया आम आप ले लें । आपको जो असुविधा हुई है, उसके लिए मैं आपसे क्षमा मांगता हूँ ।"

स्वामीजी उस बालक से बहुत प्रभावित हुए और बोले, "बेटा इस उपकार के बदले बताओ मैं तुम्हें क्या दे सकता हूँ ?" बालक बोला, "यही, जब आप अपने देश जाएँ तो वहाँ इस घटना की चर्चा किसी से नहीं करें कि एक जापानी दुकानदार ने मुझे खराब फल दिये ।" स्वामीजी उस नन्हें बालक की देशभक्ति देखकर दंग रह गये ।

(संस्मरण—स्वामी विवेकानन्द)

इतिहास एवं पुराण (२)

ब्र० मोक्ष चैतन्य
बेलुड़ मठ

अष्टादश पुराण :

अस्टादश पुराणों के नाम उनके नियत क्रमानुसार निम्नलिखित हैं।

(१) ब्रह्मपुराण
(२) पद्म पुराण
(३) विष्णु पुराण
(४) शिव पुराण
(वायु पुराण)
(५) भागवत पुराण
(६) नारद पुराण
(७) मार्कण्डेय पुराण
(८) भविष्य पुराण
(९) अग्नि पुराण
(१०) ब्रह्मवैवर्तपुराण
(११) लिङ्ग पुराण
(१२) वराह पुराण
(१३) स्कन्द पुराण
(१४) वामन पुराण
(१५) कर्म पुराण
(१६) मत्स्य पुराण
(१७) गरूड़ पुराण
(१८) ब्रह्मांण्ड पुराण

देवताओं की प्रधानता के आधार पर उपरोक्त अष्टादश पुराणों को ब्रह्म, वैष्णव एवं शैव नामक तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है।

ब्रह्म पुराण :

जिन पुराणों में ब्रह्म की प्रधानता है, उन्हें ब्रह्म पुराण कहा गया है। इसके अन्तर्गत ब्रह्म पुराण, मार्कण्डेय पुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, वामन पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण आते हैं।

वैष्णव पुराण :

इस श्रेणी के पुराणों में विष्णु की प्रधानता है। इसके अन्तर्गत पद्म पुराण, विष्णु पुराण, भागवत पुराण, नारद पुराण, वराह पुराण तथा गरुड़ पुराण आते हैं।

शैव पुराण :

शैव पुराणों में शिव की प्रधानता है। इसके अन्तर्गत शिव पुराण, अग्नि पुराण, लिङ्ग पुराण, स्कन्द पुराग, मत्स्य पुराण तथा कुर्म पुराण आते हैं।

पुराण प्रतिपाद्य विषय :

प्राचीन संस्कृत-साहित्यों की यह एक विशेषता है कि ग्रन्थकार ने किस विषय का प्रतिपादन किया है—यह बात शुरू में ही संक्षेप में कह दी जाती है। पुराणों का वक्तव्य क्या है—यह बात भी पुराणकारों ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही लिपिबद्ध कर दी। उनके अनुसार—

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षम् ॥"

अर्थात् 'सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित—पुराणों के ये पांच लक्षण हैं।' पुराणों में इन्हीं पाँच विषयों का प्रतिपादन किया गया है। जगत् तथा उसके नाना पदार्थों की उत्पत्ति अथवा सृष्टि को 'सर्ग' कहा जाता है। सृष्टि के विपरीत प्रलय को 'प्रतिसर्ग' कहते हैं। देवताओं, ऋषियों, असुरों एवं मानवों की संतान-परम्परा का उल्लेख 'वंश' कहलाता है। तथा सृष्टि-क्रम की काल गणना 'मन्वन्तर' में की गयी है। उपरोक्त वंशों के विशिष्ट व्यक्तियों के चरित्रों का वर्णन 'वंशानुचरित' कहलाता है। इतिहासों में भी 'वंशानुचरित' का प्रतिपादन किया गया है। पुराणों में वंशानुचरित का प्रतिपादन संक्षेप में किया गया है लेकिन इतिहासों में वही बिस्तार से कहा गया है। अतएव इतिहास को पुराण प्रणीत वंशानुचरित का ही विस्तृत रूप कह सकते हैं।

जैसा कि पहले कहा गया है—पुराण हिस्ट्री है। हिस्ट्री के संबंध में पुराणकारों की एक विशेष परिकल्पना थी, जिसका रूपायन उन्होंने पुराणों की रचना में की है। पुराणकारों की परिकल्पना के अनुसार कोई भी हिस्ट्री तभी पूर्ण समझी जायगी, जब उसकी कहानी सृष्टि के आरम्भ से लेकर वर्तमान काल तक क्रमबद्ध रूप से लिपिबद्ध हो। साथ ही प्रलय-काल तक उसकी कहानी चलती रहे अर्थात् प्रलय-काल तक परवर्ती घटनाओं का संयोजन उसमें समय-समय पर होता रहे। हिस्ट्री की इस वास्तविक कल्पना को ही पुराणों में हम पाते हैं। पुराणकारों ने जगत् की आरम्भिक सृष्टि से ही पुराण लिखने को प्रयत्न किया है तथा अपने समय तक के वंश एवं वंशानुचारित का वर्णन किया है। इसीलिए पुराणों में सर्ग एक अनिवार्य अङ्ग है। साथ ही प्रतिसर्ग का वर्णन करके उन्होंने प्रलयकाल तक भविष्य में होनेवाली घटनओं का समय-समय पर पुराणों में समावेश करने का प्रावधान रखा है। मन्वन्तर द्वारा विशेष-विशेष घटनाओं का काल-निर्देश किया गया है। पुराणों में मन्वन्तर के प्रसंग में कालमान के विषय की विशद चर्चा की गयी है। निमेष से लेकर मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, वर्ष और युग आदि किन्हें कहते हैं—यह सभी प्रसंग मन्वन्तर अध्याय में पाये जाते हैं। इसीलिए कहा गया है—

"मन्वन्तर प्रसङ्गेन कालज्ञानश्च कीर्त्यते।"

अतएव मन्वन्तर भी पुराण का एक अनिवार्य अङ्ग है। इस प्रकार उपरोक्त पाँच लक्षणों अथवा विषयों से युक्त होने के कारण पुराण पूर्णाङ्ग हिस्ट्री है। पुराणों से प्राचीन भारत की सभ्यता और

संस्कृति का वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। प्राचीन भारत के भौगोलिक विवरण, प्राकृतिक घटना, लोगों के आचार-विचार, धर्मसाधना आदि सभी विषय इसमें लिपिबद्ध हैं।

महापुराण :

धीरे-धीरे पुराणों के कलेवर में वृद्धि होती गयी। समय-समय पर इसमें न केवल परवर्ती घटनाओं को सन्निवेशित किया गया बल्कि इतिहास, तन्त्रशास्त्र, दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, ज्योतिष आदि विविध विषय में इसमें संयोजित कर दिये गये, जिसके फलस्वरूप यह महापुराण नामक विशालकाय ग्रन्थ में परिणत हो गया। पञ्चलक्षणात्मक पुराण अभी स्वतन्त्र रूप से नहीं पाये जाते हैं। वे सभी महापुराण में परिणत हो गये हैं। केवल विष्णु पुराण ही पञ्चलक्षणात्मक रूप में पाये जाते हैं। वायु एवं मत्स्यपुराण में महापुराण के लक्षण होने पर भी पुराण का अंश अविकृत है।

पुराणों की तरह इतिहासों, खासकर महाभारत, में भी उपरोक्त विविध विषय परवर्ती काल में संयोजित कर दिये गये जिसके फलस्वरूप वर्त्तमान में उपलब्ध इतिहासों एवं पुराणों में विषय-वस्तु की दृष्टि से कोई विशेष अन्तर नहीं रह गया है। इतिहासों में महापुरुषों के जीवन-चरित्र को केन्द्र करके पुराणों के विषयों का विभिन्न प्रसंगों में समावेश कर दिया गया है तथा पुराणों में पुराण प्रतिपादित मुख्य विषयों को केन्द्र करके इतिहास वर्णित महापुरुषों की जीवन-कथाओं को भी प्रसंग क्रम में जोड़ दिये गये हैं। अर्थात इतिहासों के मुख्य विषय पुराणों में गौण रूप से आ गये हैं, तथा इतिहासों में जो गौण विषय हैं वे पुराणों में मुख्य विषय बन गये हैं।

महापुराणों में मुख्य प्रतिपाद्य विषय :

श्रीमद्भागवत एवं ब्रह्मवैवर्त पुराण में महापुराण के दस लक्षण बताये गये हैं। श्रीमद्भागवत के अनुसार—

"सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतु रपाश्रयः॥"

अर्थात् 'सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित, संस्था, हेतु तथा अपाश्रय —ये दस लक्षण महापुराण के हैं।' इनमें सर्ग, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित तथा संस्था (अर्थात् प्रतिसर्ग)– ये पांच पुराणों के भी लक्षण हैं, जिसका विवरण पहले दिया जा चुका है। बाकी पांच लक्षणों के अर्थ इस प्रकार हैं—

विसर्ग :— एक जीव से दूसरे जीव की उत्पत्ति को विसर्ग कहते हैं।

वृत्ति :प्राणधारण करने का उपाय (जीविका) वृत्ति है।

रक्षा :—विभिन्न अवतारों द्वारा दुष्टों का विनाश एवं धर्म की स्थापना रक्षा कहलाती है।

हेतु :—वासनामय जीव ही हेतु है क्योंकि वास्तव में वही सर्ग-विसर्ग आदि का कारण है।

अपाश्रय :— ब्रह्म को अपाश्रय कहा गया है। क्योंकि वे ही जीव-जगत् के के अंतिम आश्रय हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार 'सृष्टि, विसृष्टि, स्थिति, उनका पालन, कर्मों की वासना, प्रलयों का वर्णन, मोक्ष का निरूपण, श्री हरि का गुणकीर्तन तथा देवताओं का वर्णन ये दस लक्षण महापुराण के हैं।' श्रीमद्भागवत के दस लक्षणों को ही यहां शब्दान्तर के साथ कहा गया है; अर्थ में कोई भेद नहीं है।

कुछ विद्वानों के अनुसार पुराणों के पांच लक्षणों में ही महापुरणों के दस लक्षणों का अन्तर्भाव है। उनके अनुसार पांच लक्षणों को ही विस्तृत करके दस लक्षण बताये गये हैं। इसका विशेष विवेचन न करके नीचे एक तालिका दी जा रही है, जिससे यह बात स्पष्ट हो जायगी।

पुराण के लक्षण	महापुराण के लक्षण
१. सर्ग—	सर्ग, विसर्ग, हेतु, अपाश्रय
२. प्रतिसर्ग—	संस्था
३. मन्वन्तर—	अन्तर
४-५. वंश एवं वंशानुचरित—	वंश, वंशानुचरित, वृत्ति एवं रक्षा।

उपपुराण

परवर्ती काल में कई और पुराणों की रचना हुई है। इन्हें उपपुराण कहा जाता है। लगता है उपपुराणों की रचना सम्प्रदाय-विशेषों को पुराण-सम्मत बनाने के लिए ही हुई है। उपपुराण की संख्या बहुत अधिक है जिनमें अठारह उपपुराण ही प्रमुख माने गये हैं, जैसे सनत्कुमार, नरसिंह, शिवधर्म, दुर्वाशस्, कपिल, महेश्वर, सूर्य मचीचि तथा भार्गव इत्यादि।

पुराणों का अंतिम उद्देश्य :

पुराण प्रतिपादित सभी विषयों का लक्ष्य प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ईश्वर-तत्व का ही निरूपण करना है। सभी पुराणों ने ईश्वर को अन्तिम सत्य के रूप में स्वीकार किया है। उन्हें कहीं शिव, कहीं विष्णु तथा कहीं देवी कहा गया है। विष्णुपुराण में कहा गया है -

"विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत् तत्रैव च स्थितम्।
स्थितिसंयमकर्तासौ जगतोऽस्य जगच्च सः॥"

अर्थात् 'यह जगत् विष्णु से उत्पन्न हुआ है, उन्हीं में स्थित है, वे ही इसकी स्थिति और लय के कर्ता हैं तथा यह जगत् भी वे ही हैं।' इसीलिए श्रीमद्भागवत में महापुराण के दशवें लक्षण के विवेचन के प्रसंग में कहा गया है—दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम् वर्णयन्ति महात्मनः"—अर्थात् 'इनमें (दस लक्षणों में) दसवां जो आश्रय (ईश्वर) नामक तत्व है, उसी के स्वरूप का ठीक-ठीक निश्चय करने के लिए महात्माओं ने अन्य नौ विषयों (सर्ग, विसर्ग इत्यादि) का वर्णन किया है।' इससे स्पष्ट होता है कि 'हरिकीर्तन' ही पुराणों का अन्यतम प्रतिपाद्य विषय है, अन्तिम तात्पर्य है। इसीलिए कहा गया है—

"आद्यावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते"—अर्थात् 'आदि, अन्त एवं मध्य सर्वत्र हरि का ही कीर्तन किया गया है।'

पुराणों में अतिशयोक्ति एवं अलौकिकता :

प्रस्तुत निबन्ध का उपसंहार करने के पहले पुराणों में दृष्ट अतिशयोक्ति एवं अलौकिकता के संबंध में थोड़ी विवेचना करेंगे क्योंकि इस अतिशयोक्ति एवं अलौकिकता के कारण ही लोग पुराणों को काल्पनिक समझकर इसक ऐतिहासिकता में विश्वास खो बठते हैं। शास्त्रों में वस्तु कथन के तीन प्रकार बतलाये गये हैं-- जिन्हें आलङ्कारिक भाषा में तथ्य-कथन, रूपक-कथन तथा अतिशयोक्ति-कथन कह सकते हैं। जो वस्तु जैसी हो, उसे ठीक वैसा ही कहना तथ्य-कथन है। यह कथन आधुनिक वैज्ञानिकों के लिए उपयुक्त है तथा वर्तमान समय में हिस्ट्री लिखने के लिए इसी वर्णन-शैली का प्रयोग किया जाता है। जहाँ रूपकालङ्कार का आश्रय लेकर कुछ कहा जाय, उसे रूपक-कथन कहते हैं। यह कथन-प्रणाली वेदों में पायी जाती हैं, जहाँ सूर्य की किरणों में पाये जानेवाले सात रंगों को रंग न कहकर छोड़ों का रूपक दिया गया है। पुराणों में वस्तु वर्णन के लिए अतिशयोक्ति अलङ्कार का आश्रय सदा लिया गया है तथा जो कुछ बात कही गयी है, उसे बड़ा ही विस्तृत रूप दिया गया है, जैसे इन्द्र-वृत्त के युद्ध में वृत्त की राजा के रूप में विस्तृत परिकल्पना। इस प्रकार पुराणों में जहाँ कहीं भी कोई बात कही गयी है, वहां बड़े विस्तार से कही गयी है। 'अतएव पौराणिक कथाओं के संबंध में इस कथन-प्रणाली पर ध्यान रखकर ही विचार करना चाहिए। रामायण, महाभारत में भी अतिशयोक्ति कथन का प्रयोग दिख पड़ता है जैसे सुरसा राक्षसी के मुख का विस्तार बीस योजन बताया गया है। जो लोग पुराणों की इस वर्णन शैली से अनभिज्ञ हैं वे ही पौराणिक सभी कथाओं एवं घटनाओं को कल्पना-मात्र समझ कर पुराणों के प्रति श्रद्धा रहित हो जाते हैं।

इसका अर्थ यह नहीं कि पुराणों में केवल वास्तविक घटनाओं का ही वर्णन है। इनमें काल्पनिक एवं अलौकिक कहानियों को भी स्थान दिया गया है। इन अलौकिक कथाओं का अवतारणा के पीछे एक विशेष उद्देश्य निहित है। साधारण लोगों के मनोरंजन एवं धर्मशिक्षा के लिए पुराणों की रचना हुई थी। साधारण मानव की धर्मबुद्धि अलौकिक विश्वासों के ऊपर प्रतिष्ठित है। साथ ही पुराणों को लोकप्रिय बनाने के लिए इनमें लोक-रुचिकर अतिरञ्जन की भी आवश्यकता है। इसीलिए पुराणकारों ने अलौकिक एवं अतिरञ्जित कहानियों की अवतारणा करके पुराण को जनप्रिय धर्मग्रन्थ बनाया है। पुराणकारों के इस उद्देश्य को समझ बिना पुराणों की अतिशयोक्तिपूर्ण अलौकिक कथाओं की कोई युक्तियुक्त व्याख्या नहीं दी जा सकती है।

उपसंहार :

उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि पुराण-समूह भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की सचित कोष है। पुराण के साथ परिचय नहीं रहने पर भारतीय संस्कृति, खासकर हिन्दुधर्म के क्रमविकास के सम्बन्ध में सम्यक् जानकारी असम्भव है। हिन्दूधर्म सम्बन्धी बहुविध तथ्य पुराणों में लिपिबद्ध हैं। देवतत्त्व, मूर्तिपूजा, ईश्वरपूजा, भक्ति, दर्शन, व्रतादि धर्मीय अनुष्ठान, नानाविध संस्कार, नीति तथा

धर्मादि के सम्बन्ध में जितने तथ्य इनमें निहित हैं, उतना और कहीं नहीं। पुराणों का अध्ययन करने पर तात्कालीन विविध शास्त्रों एवं विद्याओं की हमें जानकारी प्राप्त होती है। इसके साथ ही प्राचीन भारत की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि अवस्थाओं का भी स्पष्ट चित्रण भी हम इनमें पाते हैं।

पुराणों ने भारतीय समाज एवं साहित्य पर अपना प्रगाढ़ प्रभाव विस्तार किया है। जैसा कि पहले ही कहा गया है हिन्दू-धर्म एवं समाज को वर्तमान रूप देने का सर्वाधिक श्रेय इतिहास-पुराणों को ही है। प्राचीनकाल से ही साधारण नर-नारियों की धर्मज्ञानपिपासा इन ग्रन्थों से ही तृप्त होती आ रही है। इनमें आख्यान, उपाख्यान आदि की सहायता से गम्भीर तत्वों की शिक्षा अनायास ही दी गयी हैं।

शैव, शाक्त, वैष्णव आदि सम्प्रदायों के प्रधान ग्रन्थ पुराण ही हैं। भागवत पुराण वैष्णवों के लिए वेदतुल्य है। मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत 'देवी माहात्म्य' जिसे दुर्गा सप्तसती अथवा चण्डी भी कहते हैं, अति प्रसिद्ध धर्मग्रन्थ हैं। आज भी असख्य देवी-देवताओं की पूजा पुराण-निर्दिष्ट पद्धति से होती है। विभिन्न तीर्थों के माहात्म्य भी हमें पुराणों से ही प्राप्त हुए हैं।

भारतीय साहित्यों पर भी पुराण का प्रभाव अपरिसीम है। संस्कृत एवं अन्यान्य भारतीय भाषाओं के असंख्य काव्यों तथा कथा-साहित्यों के मूल उत्स पुराण ही हैं।

★

बोध कथा

बेर का पेड़ : महाराजा रणजीत सिंह कहीं जा रहे थे कि सामने से एक पत्थर आकर लगा। सिपाहियों ने इधर-उधर नजर दौड़ाई तो एक बुढ़िया के अलावा और कोई नजर नहीं आया। वे बुढ़िया को ही पकड़ लाये।

महाराज को देखकर बुढ़िया काँप उठी। विनीत होकर बोली—

'महाराज, मेरा बेटा कल से भखा है। घर में खाने को कुछ था नहीं इसीलिए बेर के पेड़ पर पत्थर मार रही थी, ताकि बेर टूट कर गिरे और मैं अपने बेटे को खिला सकूँ। गलती से एक पत्थर आपको जा लगा, गलती हुई, क्षमा करें महाराज।'

महाराज कुछ क्षण सोचने के बाद बोले—'इस माँ को एक हजार रुपये देकर सम्मानपूर्वक छोड़ दिया जाए।'

सिपाहियों ने हैरान होकर पूछा- 'महाराज ! इसे तो दंड मिलना चाहिए आप तो पुरस्कार दे रहे हैं !

महाराज ने उत्तर दिया—'यदि एक बेजान पेड़ पत्थर लगने पर मीठे फल देता है, तो पंजाब का महाराजा उसे खाली हाथ कैसे लौट जाने दे ?

देवलोक

स्वामी अपूर्वानन्द
अनुवादक—स्वामी ज्ञानातीतानन्द
रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

चेतला श्रीरामकृष्ण मण्डप में महापुरुषजी

स्थानीय चेतला श्रीरामकृष्ण मण्डप में भक्तगण महापुरुषजी की अनुभूति से एक छोटा उत्सव का आयोजन करके एक दिन सबेरे साढ़े नौ बजे उनको गदाधर आश्रम से मण्डप दिखाने गाड़ी से ले गए। मैं भी उनके साथ गया था। महापुरुषजी जाते ही ठाकुर को प्रणाम करके ठाकुरघर में बैठकर थोड़ी देर ध्यान किया। उसी समय भक्तगण खोल करताल बजाकर ठाकुर का नामकीर्तन करना आरम्भ किया। वे ठाकुरघर से निकलकर कीर्तन में योग दिया एवं हाथ ताली देकर भक्तों के साथ कीर्तन गाया। उससे भक्तों को विशेष उद्दीपना हुई। बाद में भक्तों की विशेष प्रार्थना से वे ठाकुर पूजा करके ठाकुर को फल-मिष्टान्नादि निवेदन किया। ठाकुरघर से निकल कर बैठते ही उनको फल-मिष्टान्नादि प्रसाद दिया गया। महापुरुषजी का निवेदित प्रसाद पाकर भक्तों के आनन्द की सीमा नहीं रही। सभी ने उनको प्रणाम किया उन्होंने सभी को आशीर्वाद दिया एवं समयोपयोगी उपदेश देकर गदाधर आश्रम वापस लौट आए।

महापुरुषजी की उपस्थिति से स्थानीय भक्तगण को विशेष उत्साह मिला था। वे भी प्रतिदिन विभिन्न समय में ठाकुर-प्रसंग, त्याग-वैराग्य और साधन भजन के सम्बन्ध में इतने तन्मय हो जाते कि सभी मुग्ध होकर सुनते। फलस्वरूप बहुत से भक्त आश्रम में आकर नियमित भाव से सबेरे-संध्या ध्यान-जप करने लगे। क्रमश: इस आश्रम को केन्द्र करके बहुत-से भक्तों का आध्यात्मिक जीवन गठित हुआ था एवं कई युवक भक्त संसारत्यागी होकर बेलूड़ मठ में योगदान भी दिये थे।

पाँच-छ: दिन बाद गदाधर आश्रम से बेलूड़ मठ लौट कर उन्होंने मुझसे कहा : 'आज से तुम रोज आरती के समय हारमोनियम बजाकर आरात्रिक भजन और देवी प्रणाम गाना।' महापुरुषजी के निर्देशानुसार उस दिन से बेलूड़मठ में नित्य हारमोनियम बजाकर आरात्रिक गाना प्रारम्भ हुआ।

मठ में महापुरुषजी का जन्मतिथि उत्सव

१९२४ ई०, २ जनवरी महापुरुषजी का शुभ जन्मतिथि बेलूड़ मठ में प्रथम बार मनाया गया। उनके जन्म का सन् वर्ष तारीख किसी का जाना नहीं था। उनका कोई जन्मकुंडली भी नहीं मिला। उनको पूछने पर वे गम्भीर स्वर में कहते : "मैं तो अजर अमर आत्मा, मेरा और क्या जन्म।'

कभी ऐसा भी कहते : 'मेरा जन्म हुआ है ऐसा मालूम ही नहीं पड़ता।' उन्होंने एक समय कहा था 'मेरी एक बहुत बड़ी जन्मकुंडली थी। इस कुंडली को मेरे पिताजी ने बनवाया था। मैं जब पिताजी

को प्रणाम कर उनका आशीर्वाद लेकर घर छोड़ कर चला आ रहा था उस समय पिताजी एक प्रकार से जोर करके कुंडली को मेरे साथ दे दिया था। बाद में एक दिन बराहनगर मठ में रहते एक दिन परामानिक घाट में स्नान करते आकर इस कुंडली को गंगाजल में विसर्जन दे दिया। अभी भी ठीक याद आता है वह दस-बारह हाथ लम्बी कुंडली हिलती डुलती गंगा के स्रोत में बहती चली गई।' उनके जन्म की तिथि नक्षत्र के सम्बन्ध में पूछने पर उन्होंने एक बार कहा था कि अग्रहायन कृष्णा एकादशी में उनका जन्म, इतना ही याद है।

महापुरुषजी संघाध्यक्ष होने के बाद अनेक साधु-भक्तों के प्राणों में उनके जन्म तिथि पालन की बात जागी। किन्तु उसका कोई उपाय नहीं था। इसी समय १९२३ ई० में एक भक्त की विशेष चेष्टा से कलकत्ता के एक अच्छे ज्योतिषी से कौशलपूर्वक महापुषजी का हाथ दिखाया गया। ये ज्योतिषी लुप्त कुंडली बनाने में तथा हाथ कुंडली बनाने में विशेषज्ञ थे। वे बहुत यत्न से, महापुरुषजी जो कहा था—अग्रहायण कृष्णा एकादशी में उनका जन्म उसके आधार पर महापुरुषजी के जन्म की तारीख का पता लगाया। इस प्रकार मालूम किये गये उपाय से १९२३ ई० में श्री श्री भा के उत्सव के ठीक चार दिन बाद महापुरुषजी की जन्म तिथि का आयोजन किया गया। अवश्य ही बहुत-से लोगों को प्रसाद देने की व्यवस्था जो की गई थी वह उनको बिना बताए। उनको केवल यह बताया गया था कि, इस दिन ठाकुर की विशेष पूजा और होमादि होगा एवं जो भक्त आयेंगे वे प्रसाद पायेंगे। एकादशी का दिन था इसीलिए सभी के लिए पक्का प्रसाद की व्यवस्था की गई। महापुरुष जी को उसमें कोई आपत्ति नहीं थी एवं ठाकुर की विशेष पूजा होगी यह जानकर वे प्रसन्न हुए थे।

इस दिन प्रातः काल से बहुत-से भक्तों की भीड़ हुई थी। वे भी आक्लान्त भाव से सबका प्रणाम ले रहे थे एवं तन्मय होकर सभी को खूब आशीर्वाद दे रहे थे। फूल, फल, माला, मिष्ठान्न और वस्त्र आदि स्तूपाकार हो गई थी। साथ-ही-साथ वितरण की व्यवस्था भी हो गई थी। उन्होंने अपने हाथ से बहुतो को दिया। मन्दिर में भोगादि के बाद उनके लिए प्रसाद लाया गया। वे प्रतिदिन की तरह अपना झोलभात खाकर विश्राम करने गए। इधर मठ के बरांडे में, गंगा के किनारे एवं पास के बगीचे से भक्तों के प्रसाद पाने के समय क्षण-क्षण जयध्वनि से मठ भर गया। तब महापुरुषजी दरवाजा-खिड़की खोल कर चारो ओर अगणित भक्त प्रसाद पाने बैठे हैं देख कर विचलित होकर मुझको पूछा : 'आज क्या बात है? इतने भक्त प्रसाद पाने बैठे हैं? पूरा होगा तो?' यह बात कहते-कहते वे इतने विचलित हो गए कि उनकी हड्डियाँ काँपने लगी और ज्वर हो गया। मेरे थोड़ा बोलते ही वे अत्यन्त व्यस्त होकर कम्पित स्वर में बोले : 'क्या, मुझको तो किसी ने कुछ नहीं बताया नहीं। तुम कृष्णलाल को बोल कर आओ कि ठाकुर के स्थान में आकर कोई भूखा न रहे। जरूरत हो तो द्वारिक मयरार की दूकान से भोजन ला कर सबको पेट भर कर खाना दिया जाय।' यह सब बातें कह रहे हैं और काँप रहे हैं, एवं मुझे बार-बार भेजते हैं घूम-घूम कर देखने के लिए कि जिससे सभी पेट भर कर भोजन पाए। वे भी ज्वर वाले शरीर से खूब अस्थिर भाव से खिड़की-दरवाजा से मुख बढ़ा कर भक्तों का खाना देख रहे हैं। सायं तीन बजे के बाद कृष्णलाल महाराज ने आकर प्रणाम करके जब कहा कि, प्रायः चार हजार भक्तों ने ठाकुर का पक्का प्रसाद परम तृप्ति के साथ खाया, तब वे शांत होकर बिस्तरे पर जाकर सो गए। शाम को उनका बुखार दूर हो गया। इसी वर्ष से प्रत्येक वर्ष अन्यान्य गुरुभाइयों के जन्म तिथि के अनुसार महापुरुषजी की जन्मतिथि बेलुड़ मठ में अनुष्ठित होने लगी। □

समाचार एवं सूचनाएँ

बिहार में श्रीमत् स्वामी गहनानन्दजी महाराज

छपरा, १ मई। रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के परम उपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी गहनानन्द जी महाराज ने गत मार्च एवं अप्रैल के मध्य में विहार की व्यापक यात्रा कर आध्यात्मिक पिपासुओं के हृदय में गहन आनन्द का संचार किया। उन्होंने गत १२ और १३ मार्च को रामकृष्ण मठ, जामतारा में श्रीरामकृष्ण के श्रद्धालु भक्त नर-नारियों को दीक्षा दी। १४ मार्च को रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर में उन्होंने पधारने की कृपा की तथा उसी संध्या को आयोजित धर्म सभा में उन्होंने व्याख्यान दिया! १५ और १६ मार्च को उन्होंने शताधिक नर-नारियों को दीक्षा प्रदान करने की कृपा की।

पुनः ४ अप्रैल, १९९६ को उनका शुभागमन रामकृष्ण-विवेकानन्द आश्रम, दरभंगा में हुआ। उसी दिन उन्होंने वहाँ श्रीरामकृष्ण के भक्तों एवं प्रबुद्ध नागरिकों की सभा को सम्बोधित किया तथा ५ अप्रैल को भक्तों को दीक्षा देने की कृपा की।

६ अप्रैल को मुजफ्फरपुर रामकृष्ण-विवेकानन्द सेवाश्रम में उनका शुभागमन हुआ। ७ अप्रैल को सेवाश्रम द्वारा आयोजित भक्त सम्मेलन को उन्होंने उद्बोधित किया तथा ८ अप्रैल को प्रायः साठ व्यक्तियों को दीक्षा दी।

९ अप्रैल को श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा में श्रीमत स्वामी गहनानन्दजी महाराज ने पधारने का कृपा की। उनके साथ ही श्रीमत स्वामी सुहितानन्दजी महाराज, सचिव रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ देवघर, श्रीमत् स्वामी चन्द्रानन्दजी महाराज, सचिव रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना, श्रीमत् स्वामी निखिलात्मानन्दजी महाराज, अध्यक्ष रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद, स्वामी मुक्तिकामानन्दजी महाराज, रामकृष्ण योगोद्यान मठ, कांकुड़गाछी, कलकत्ता, श्रीमत् स्वामी प्रबुद्धानन्दजी महाराज, सचिव, रामकृष्ण विवेकानन्द सेवाश्रम, मुजफ्फरपुर आदि ने भी पधारने की कृपा की।

उसी दिन संध्या में आयोजित जन सभा का उद्घाटन करते हुए श्री रवीन्द्र कुमार श्रीवास्तव, आई. ए. एस., जिला पदाधिकारी, सारण ने कहा कि वर्तमान भौतिकवादी एवं भोगवादी विश्व में श्रीरामकृष्ण श्रीमाँ सारदा देवी एवं स्वामी विवेकानन्द के सन्देश को जीवन में उतार कर ही मनुष्य सच्चा आनन्द और शान्ति प्राप्त कर सकता है। उन्होंने स्थानीय आश्रम की समस्याओं के समाधान का भी आश्वासन दिया।

इसी सभा में स्वामी सुहितानन्दजी महाराज ने श्री माँ सारदा देवी के परम पावन जीवन और जीवनदायी सन्देशों पर प्रकाश डाला। श्रीमत स्वामी निखिलात्मानन्द जी महाराज ने श्रीराम और श्रीरामकृष्ण विषय पर बड़ा ही सारगर्भ व्याख्यान देते हुए श्रीराम और श्रीरामकृष्ण की समरूपता पर प्रकाश डाला। श्रीमत् स्वामी गहनानन्द जी महाराज ने आशीर्वचन दिया।

इन सन्तों एवं श्रोताओं का स्वागत आश्रम के सचिव डॉ० केदारनाथ लाभ तथा धन्यवाद ज्ञापन डॉ० राम उदेश्वर शर्मा ने किया। उद्बोधन एवं समापन गीत प्रो० मानसी चटर्जी तथा सहेलियों ने गाया। इसके पूर्व आश्रम में पदार्पण के समय पूज्य स्वामी गहनानन्दजी महाराज का शंखध्वनि से स्वागत किया गया। भक्तों ने उनकी आरती उतारी एवं आश्रम की भूमि पर पैर रखते ही डॉ० केदारनाथ लाभ पुष्पमाला पहनाकर उनके चरणों पर विनत प्रणाम कर उनका सश्रद्ध स्वागत किया। पूजनीय महाराज ने आश्रम के गर्भगृह में प्रवेश कर श्रीरामकृष्ण देव, श्री माँ सारदा देवी, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी अद्भुतानन्द महाराज की पूजा-अर्चना एवं आरती कर साष्टांग प्रणाम किया।

१० अप्रैल को प्रात: ७ से १२ बजे दिन तक स्वामी गहनानन्दजी महाराज ने छपरे के प्राय: चालीस व्यक्तियों को दीक्षा देने की अनुकम्पा की। दीक्षार्थियों में एक महिला नेपाल से भी आयी थी।

उसी दिन संध्या को युवा सम्मेलन का भव्य आयोजन हुआ। स्वामी निखिलात्मानन्दजी महाराज ने 'युवको के प्रेरक विवेकानन्द' विषय पर बड़ा ही भावोत्तेजक एवं प्रेरणादायी प्रवचन दिया। श्रोतागण प्राय: १ घंटे तक मंत्रमुग्ध हो उनका प्रवचन सुनते रहे। आरम्भ में युवकों की ओर से श्री चन्दन कुमार और कुमारी ऋचा रश्मि ने स्वामी जी और युवजन विषय पर प्रेरक व्याख्यान दिये। स्वामी सुहितानन्द जी महाराज ने भी स्वामीजी के जीवन की विभिन्न घटनाओं का उल्लेख कर उनसे सीख लेने की प्रेरणा दी। श्रीमत स्वामी गहनानन्दजी महाराज ने अनेक कथाओं के माध्यम से युवकों में स्वामी विवेकानन्द के मानवतावाद देश प्रेम, पवित्रता, त्याग एवं सेवाभाव को ग्रहण करने का संकल्प लेने का आह्वान किया। उन्होंने सभा में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति को आश्रम की ओर से स्वामीजी की जीवनी एवं अन्य पुस्तकें प्रदान कीं।

डॉ० रामकिशोर प्रसाद श्रीवास्तव ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

११ अप्रैल से प्रात: आयोजित धर्म सभा में स्वामी सुहितानन्द जी महाराज ने गीता पर व्याख्यान दिया तथा स्वामी निखिलात्मानन्दजी महराज ने 'परम सन्त हनुमन्त' विषय पर बड़ा ही हृदयग्राही प्रवचन दिया। पूज्य स्वामी गहनानन्द जी महराज के आशीर्वचन से सभा का भावस्थ मुद्रा में समापन हुआ। प्रो० राधाकृष्ण प्रसाद ने नगर की ओर से तथा डॉ० केदार नाथ लाभ ने आश्रम की ओर से आन्तरिक धन्यवाद अर्पित किये।

संसार में जब आया है तो एक स्मृति छोड़कर जा, वरना पेड़-पत्थर भी तो पैदा तथा नष्ट होते रहते हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

जीवन की समस्त लयों के अनुकूल

पीयरलेस

दि पीयरलेस जेनरल फाइनैन्स एण्ड
इन्वेस्टमेन्ट कं० लिमिटेड
पीयरलेस भवन
३, एसप्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता—७००००६९

भारत की वृहत्तम नॉन-बैंकिंग बचत कम्पनी

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी.-१४-८३

विश्ववन्द्य स्वामी विवेकानन्दजी की बहुप्रतीक्षित बृहत् जीवनी

युगनायक विवेकानन्द

तीन खण्डों में

स्वामी गम्भीरानन्दजी द्वारा लिखित
स्वामी विवेकानन्दजी की यह मूल बंगला जीवनी
उनका अत्यन्त प्रामाणिक और अन्तर्दृष्टिसम्पन्न
जीवन-चरित मानी जाती है। सर्वदूर समादृत यह ग्रन्थ अब
हिन्दी-भाषी पाठकों को उपलब्ध हुआ है। हिन्दी में
स्वामी विवेकानन्दजी के बृहत्, प्रमाणभूत जीवनी का
अभाव था, जिसकी पूर्ति इस प्रकाशन से अब
हो गई है।

हर खण्ड करीब डमाई ४०० पृष्ठों का है।

हर खण्ड का मूल्य रु. ५०/- *तीन खण्डों का एकत्रित मूल्य रु. १२०/-*

प्रकाशक :

रामकृष्ण मठ

(प्रकाशन विभाग), धन्तोली, नागपुर-४४००१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सईदपुर, पटना-४ में मुद्रित।